परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्त्रग्रन्थसंग्रह

❋ जन्मदिवस 19–03–1971 ❋ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❋ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

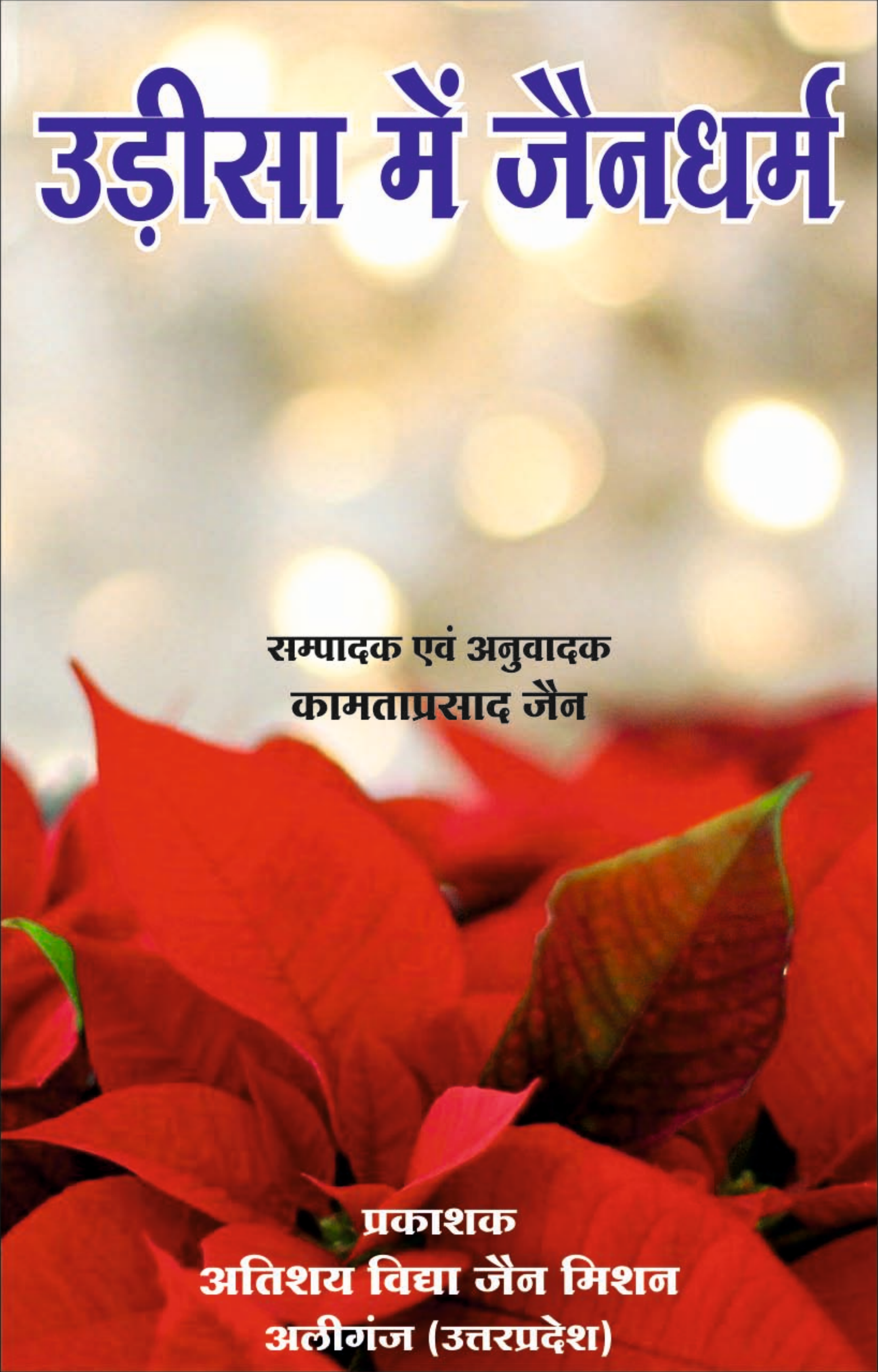

उड़ीसा में जैनधर्म

सम्पादक एवं अनुवादक
कामताप्रसाद जैन

प्रकाशक
अतिशय विद्या जैन मिशन
अलीगंज (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

उड़ीसा में जैनधर्म

प्रकाशक -
अखिल विश्व जैन मिशन
अलीगंज (एटा)
उ० प्र०

विश्व धर्म जीयात् ।

अहिंसा परमो धर्म यतो धर्मस्ततो जय.

निर्ग्रन्थ मत शासन ।

मुद्रक -
महावीर मुद्रणालय
अलीगंज (एटा)
उ०प्र०

* दो शब्द *

'कुमारीपर्वते विजय-चक्र-कुमारीपवते ॥१॥१४'

खण्डगिरि-उदयगिरि के प्रसिद्ध और प्राचीन हाथीगुफा शिलालेख के उक्त वाक्य में स्पष्ट कहा गया है कि कुमारी पर्वत से जैनधर्म का विजयचक्र प्रवर्तमान हुआ था। उसी शिलालेख से यह भी सिद्ध है कि कलिंग में अग्र-जिन ऋषभ की विशेष मान्यता थी— उनकी मूर्ति कलिंग की राष्ट्रीय निधि मानी जाती थी, जिसे नन्दराजा पाटलिपुत्र ले गये थे। किंतु खारवेल कलिङ्ग राष्ट्र के उस गौरव चिन्ह को मगध विजय करके वापस लाये थे। 'मार्कण्डेयपुराण' की तेलुगु आवृत्ति से स्पष्ट है कि कलिङ्ग पर जिस नन्दराजा ने शासन किया था वह जैन था। जैन होने के कारण ही वह अग्रजिनकी मूर्ति को पाटलि पुत्र ले गया था। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि कलिङ्ग में जैन धर्म का अस्तित्व एक अत्यन्त प्राचीन काल से है। स्वय तीर्थंकर ऋषभ और फिर अन्त में तीर्थङ्कर महावीर ने कलिंग में विहार किया और जैन धर्मचक्र का प्रवर्तन कुमारी पर्वत की दिव्य चोटी से किया। भ० महावीर के समय में उनके फूफा जितशत्रु कलिंग पर शासन करते थे। उनके पश्चात् कई शताब्दियों तक जैन धर्म का प्रभाव कलिंग के मानव जीवन पर बना रहा; परन्तु मध्य काल में वह हतप्रभ हुआ। फिर भी उसका प्रभाव कलिंग के लोक जीवनमें निःशेष न हो सका। आज भी लाखों सराक-प्राचीन श्रावक (जैन) ही हैं। पूज्य स्व० ब० शीतल प्रसाद जी ने कलिंग, जिसे आज कल उड़ीसा कहते हैं, उसमें ही 'कोटशिला' जैसे प्राचीन तीर्थ का पता लगाया था; किन्तु उसका उद्धार आज तक नहीं हुआ है। अतः कहना होगा कि निस्सन्देह कलिंग अथवा उड़ीसा जैन धर्म का प्रमुख केन्द्रीय प्रदेश रहा है और उसने यहां के जन जीवन को अहिंसा के पावन रंगमें रंगा है। यद्यपि आज उड़ीसा में एक भी जैनी नहीं है, फिर भी उसका प्रभाव अब भी जीवित है। उड़ीसा सरकार के प्रधान मन्त्री मा० श्री डॉ० हरेकृष्ण मेहताब इस प्रभाव से अपरिचित नहीं हैं। वह स्वयं अहिंसा के एक जीवित प्रतीक हैं। उनसे जब अ० विश्व जैन मिशन ने यह निवेदन किया कि कुमारी पर्वत पर कलिंग की पूर्व परम्परा के अनुसार एक अहिंसा सम्मेलन बुलाया जाय, तो उन्होंने इस सुझाव को पसंद

किया जिसके लिए मिशन उनका आभारी है और लिखा कि इस वर्ष तो नहीं, किन्तु संभव है कि सन १९६० में एक अहिंसा सम्मेलन बुलाया जा सके। मा० प्रधान मन्त्री का यह आश्वासन अहिंसा के लिये एक विशेष महत्व का है।

कलिंग में जैनधर्म के लिये एक दूसरी गौरवशाली बात यह भी है कि यहाँ के सर्वश्रेष्ठ और लोक प्रसिद्ध शासक कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल जैन धर्मानुयायी थे। कलिंग के राजवंश में जैनधर्म कई शताब्दियों तक मान्य रहा था। खारवेल जैसे वीर विजेता के आगमन की वार्ता को सुनते ही विदेशी यवन दमत्रयस (Demiterius) मथुरा छोड़ कर भाग गया था। सचमुच भारतीय स्वाधीनता के संरक्षक वीर खारवेल थे। किन्तु यह एक बड़ी कमी थी कि उन महान् वीर शासक और कलिंग देशमें जैनधर्म के प्रभाव का परिचायक कोई भी पुस्तक हिन्दी में न थी। इस कमी की पूर्ति करने का विचार कई बार सामने आया, पर समय पर ही सब काम होते हैं।

संभवतः सन् १९५७ में किसी समय कटक के वयोवृद्ध विद्वान् डॉ० श्री लक्ष्मीनारायणजी साहू ने हमें लिखा कि वह 'उड़ीसा में जैन धर्म' विषयक थीसिस लिख रहे हैं, जिसके लिए उनको कई ग्रंथों की आवश्यकता है। मिशन का अन्तर्राष्ट्रीय जैन विद्यापीठ इस प्रकार की शोध को सफल बनाने के लिये ही है। अतः साहू जी को साहित्य भेजा गया और उनको पूरा सहयोग दिया गया। आखिर उनकी थीसिस पूरी हुई और उत्कल विश्वविद्यालय ने उसे मान्यता देकर साहू जी को डॉक्टर की उपाधि से विभूषित किया। यद्यपि उन्होंने इसे उड़िया भाषा में लिखा था और उड़ियाभाषी जैनों का अभाव होते हुए भी उसका प्रकाशन कटक से सुन्दर रूप में हुआ देखकर हमें लगा कि उड़िया भाइयों में अपनी प्राचीन धर्म-संस्कृति के प्रति कितना गहन आदर भाव है। इसी समय हमने डॉक्टर साहू को लिखा कि वह इसे हिन्दी भाषा में लिखें तो यह मिशन की विद्यापीठ द्वारा मान्य की जाकर प्रकाशित हो सकती है। हिन्दी का विशेष ज्ञान न रखते हुए भी उन्होंने हमारे सुझाव को स्वीकार किया और अपने मित्रों के सहयोग से इसे हिन्दी का रूपान्तर देकर राष्ट्रभाषा को गौरवान्वित किया है। अप्रेल ५८ को भोपाल के अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा सम्मेलन में

श्रीमान् सेठ अमरचन्द जी जैन, पहाड्या सा०
कलकत्ता

(आपके ही आर्थिक सहयोग से प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित हो रही है। एतदर्थ धन्यवाद।)

मिशन विद्यापीठ द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ मान्य हुआ और उसके उपलक्ष में डॉक्टर साहू को 'इतिहासरत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया। इसके लिए मिशन डॉक्टर साहू का अत्यन्त आभारी है।

डॉ० साहू ने बड़े परिश्रम से खोज करके इसे लिखा है और इसके लिये उपयुक्त चित्र भी आप ही ने हमें भेजे हैं। उनके निष्कर्ष और परिणाम अपना महत्व रखते हैं। संभव है कि उनसे कोई विद्वान कहीं पर सहमत न हो किन्तु फिर भी उनकी प्रामाणिकता में संशय नहीं किया जा सकता। निस्सन्देह उन्होंने उड़ीसा में जैनधर्म का परिचय उपस्थित करने में कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी है। इस वृद्धावस्था में—श्वास रोग से पीड़ित होते हुये भी—आपकी ज्ञानाराधना की लगन अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

भोपाल मिशन अधिवेशन के सभापति पल्लासराटी के कर्मठ वीर और धर्म प्रभावक दानवीर श्रीमान सेठ अमरचन्द जी पहाड्या उन विद्वानों की रचनाओं से ऐसे प्रभावित हुये कि उन्होंने उसी समय ग्रन्थ प्रकाशन के लिए मिशन को पांच हजार रु० प्रदान करने की घोषणा की। सेठ सा० की इस दानशीलता से इसका प्रकाशन सुगमसाध्य हुआ है। मिशन सेठ सा० का अत्यन्त आभारी है और उनसे वह और भी विशेष आशा रखता है।

पुस्तक आपके समक्ष है जो मिशन के सदस्यों को भेंट की जा रही है। कुछ प्रतियां बचेंगी, जिनको सर्व साधारण पाठक भी प्राप्त कर सकेंगे। आशा है, पुस्तक सभी को रुचिकर होगी।

विनीत—

कामताप्रसाद जैन

ऑनरेरी संचालक
अ० वि० जैन मिशन अलीगंज (एटा)

ग्रन्थ-प्रवेश

यशस्वी श्री लक्ष्मीनारायण साहू जी ने जीवन की परिणत अवस्थामें पूर्वापर संगतिके साथ विधिवद्ध रूपसे जैनधर्मके बारे में एक ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथको ओडीसा विश्वविद्यालय में देकर इसके लिये डाक्टरकी उपाधि प्राप्त करनेकी सुखद कल्पना उन्हें रही। जैनधर्मके ऊपर, खास कर उत्कलके जैनधर्मके संबंधमें ऐसा दूसरा ग्रंथ मैंने पहले नहीं देखा था। अभी तक प्राप्त पुराविद तथ्यानुकूल-उत्कलके धर्मराज्यमें जैनधर्मका जो स्थान है, उसे उन्होंने इतिहास-परंपरा तथा सामाजिक विश्वास और अनुष्ठान आदिसे बहु प्रयत्न और प्रयासके साथ चुनकर लिखा है और उस पर आलोचना की है। बीच बीचमें प्रसंगके अनुरोध से उन्होंने ऐतिहासिक गवेषणाके नूतन आविष्कारोंके ऊपर जो सादर निर्देश किया है, वह बड़ा ही सुन्दर और उपादेय रहा है।

गवेषणा का प्रकार

उत्कल तथा भारतके ऐतिहासिक क्षेत्र में ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनको सत्य या निश्चय मान लेना ठीक नहीं होगा। लेकिन आलोचनाके लिये तथा गवेषणाके सिद्धान्तोंको सबके सामने रखना उपादेय है। उदाहरणके लिये सम्राट खारवेलके समयका निरूपण और 'मादला पाञ्जि' (पुरी का पञ्चांग) के 'रक्तबाहु उपाख्यान' में डा० नवीनकुमार साहु के द्वारा आक्रमण एवं यवनोंके शासनका जो आभास और आलोचना

श्री लक्ष्मीनारायण जी ने दी है, वह स्पृहणीय है।

उसमें से कुछ बातों की आलोचना—

ऐतिहासिककालीन उत्कलमें उन्होंने जैनधर्मकी परंपरा दिखाने की भरसक कोशिश की है। सम्राट्‌खारवेलके शिलालेख में जो 'तिवसुत्र'वाक्य है उसका अर्थ 'तीन सौ साल'करके पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेवाले 'नंदराजा' तथा उस जमानेके उत्तरी और उत्तर-पूर्वी भारतमें मगधके राजाओंका जैन होना और कलिंग वासियोंका जैनधर्मी होना दिखाया है, इस बातका अनुमान करते हुए उन्होंने इस के लिये काफी प्रमाण दिये हैं। इसके अलावा सम्राट खारवेलके जमानेमें मथुरावासियोंके जैन होनेका अनुमान करके आलोचना भी की है। और खारवेलके शिलालेखमें स्पष्ट लिखा न होने पर भी उन्होंने इस बातको सत्य मान लिया है कि खारवेल मगध और अंग देशसे लूट कर बहुत धन कलिङ्ग ले गये थे। इस क्षेत्रमें श्री लक्ष्मीनारायण जी का अध्यवसाय असामान्य है।

ऐसे सिद्धांत और तथ्यों को सामने रखकर आलोचना की जाय तो एक विराट ग्रन्थ होगा, पंडित लक्ष्मीनारायण जी ने बहु योग्य सहायकोंको पाकर पुष्कलग्रंथ पाठको और उनमें से चुने हुए विषयाशोंपर नजर रखते हुए आलोचना करनेका जो परिचय दिया है वह और कहीं हो न हो, उत्कलमें असामान्य है।

इस ग्रंथ का मुखबंध मुझे लिखना है।

ग्रंथ की इस विशालता की आलोचना, लक्षित विषयांशों की विराटता और विचार की वनिष्ठता को लेकर उन्होंने जो ग्रंथ लिखा है, जिस की पूर्ति के लिये उन्होंने सात साल, दिन तो दिन बल्कि रातको भी और रोगशय्याग्रस्त होने पर भी एकांत भावसे बिताये हैं वही ग्रंथ है, जिसकामुखबंध लिखने का भार मुझे अर्पित किया है।

मेरी असुविधा—

मैंने इन क्षेत्रों में साक्षात् रूपसे आलोचना करना कुछ हद तक छोड दिया है। ग्रंथ पाठका शारीरिक श्रम भी अब मेरे लिये प्राय सभव नही है, फिर भी इस क्षेत्रमें जो इस परिणत वयमें जो प्रतिष्ठित धारणा हो गयी है,उसके बल पर कुछ लिख रहा हूँ।

मेरा मुलबध

श्रीलक्ष्मीनारायणजी ने जैनधर्मके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है वह सब उपादेय है,लेकिन उनके इन विचारो तथा आलोचना से जैनधर्मकी सारी बातें समझी नहीं जासकतीं। सिर्फ उत्कल या भारत में ही नही बल्कि पुराने सभ्यमानव समाज में भी जैनधर्म की बडी प्रतिष्ठा थी। उसके सकेत और निदर्शन आज भी उपलब्ध हैं। भारत में अब भी इस धर्मकी प्रतिष्ठा,प्रभाव और प्रतिपत्ति सभी प्रचलित धर्मोंमें प्रतिष्ठित और प्रचारित हैं, यद्यपि विभिन्न कारणो से इसकी यह प्रतिष्ठा पूरी तरह दिखती जरूर नही हैं और इस्लाम या ईसाई धर्म का सा प्रचार भी नहीं है, जिससे कि स्पष्ट दिखाई दे।

जैन नामका एक सम्प्रदाय अब भी भारतमें है। पृथ्वी पर अन्यत्र जैनधर्म अभी तक स्वतन्त्र धर्मके रूपमें नही दिखा है,लेकिन भारत में है। और भारत का यह जैनधर्म कुछ हद तक आदान प्रदान के कारण दूसरे धर्मोंका सा हो गया है। इसलिये उसमें श्री लक्ष्मीनारायणजी ने जैनधर्म का जो स्वरूप बतलाया है वह पूर्णतः स्पष्ट नही है। फिरभी कहा जा सकता है, कि जैनधर्म अबभी भारतमें चिरस्थायी रूपमें है। खासकर उत्कलमें प्राचीन कलिंग के कालसे इस धर्मका प्रमुखत्व था और प्रभाव बडा गहरा था। इसके बहुतसे प्रमाण हैं। अब भी जगन्नाथजीमें इस के सारे प्रमाणो की खोज की जा सकती है। इसके अलावा

आजसे करीब २५०० साल पहले इस जैनधर्म से जिस बौद्धधर्म का उद्भव हुआ था, उसकी विशेष आलोचना भी जरूरी है। इसके निर्णय में अबतक पश्चिमी और भारतीय प्रत्नतत्त्वविदो के बहुत से भ्रम रह रहे है। और खारवेल आदिके संबध में भी याद रखना होगा कि वे और उनके जमाने का धर्म और उनके बाद एक हजार साल के बाद का धर्म यद्यपि जैनधर्म के नामसे ख्यात है फिर भी विशुद्ध जैनधर्म नही हो सकता। मुमकिन है कि तब तक इस पर बौद्धधर्म का प्रभाव पड गया होगा। उत्कलमें यद्यपि वह धर्मके नामसे प्रचलित था, फिर भी शायद उसके साथ हीनयान-बौद्धधर्म मिल चुका था। विशेषत ह्यु एनसा के विवरण और बुद्धदन्त की सिंहली परम्परासे यह जाना जाता है।

ह्यु एनसां के कालकी बात

ह्यु एनसा के काल में चीनी तथा तद्विद् पण्डितो के विचारमें बौद्धधर्म का अर्थ 'महायान बौद्धधर्म' था। उस समय पूर्वी भारत में संभव है कि वज्रयान तक का विकास हो चुका था। इसलिये वे समझते थे कि बौद्धधर्म के माने निग्रहानुग्रह समर्थ भगवान बुद्धका धर्म अथवा शून्यवादी घोर वामाचारियों का आचार है। उस समय यथार्थ मौलिक बौद्धधर्म हीनयानी बौद्धधर्म में पर्यवसित हो चुका था। मुमकिन हैं कि जैनधर्मियो में से कितने ही हीनयानी बौद्धोके रूपमें परिचित थे। जिनको अपने धर्म के प्रतिपादन के लिये हर्षवर्द्धन ने बुलाया था, वे जैन थे।

जैनधर्म और बौद्धधर्म

अफसोस की बात है कि उन्नीसवी सदी के योरोपीय प्रत्नतात्त्विकोने इस बात को गलत रूपमें समझ कर भारत तथा संसार के लिये एक भ्रमपरम्परा बना दी है। सुनने को

मिलता है कि पूर्वी भारतमें गौतमबुद्ध नामका कोई नामी पुरुष हुआ था, जिसने वैदिक यागयज्ञ और जातिभेद के खिलाफ अपना मत प्रकाशित किया था, बस, आलोचना उसी रास्ते पर आगे बढ़ी। तब माना जाता था कि बौद्धधर्म से जैनधर्म की उत्पत्ति हुई है। जर्मन पण्डित जैकोबी और उनके मतको मानने वालोंने धीरे-धीरे इस धारणाका खण्डन किया, उनके मतमें जैनधर्म पहलेसे था। तथापि वह भी शाक्यमुनि बौद्धधर्म के समान वैदिकधर्मका विरोधी बताया गया था। लेकिन दर-असल यह धारणा गलत है। पंडित लक्ष्मीनारायणजी ने भी भ० पार्श्वनाथ तथा उनकी साधनाके प्रति संकेत करके आलोचना करते हुए जैनधर्मकी इस प्राचीनता तथा परम्परा के बारेमें बहुत सी सूचनाएँ दी हैं। वस्तुत जैनधर्म संसारमें मूल अध्यात्म धर्म है। इस देशमें वैदिक धर्मके आने के बहुत ही पहलेसे यहाँ में जैनधर्म प्रचलित था। खूब संभव है कि प्राग्वैदिकोंमें, शायद द्राविडोंमें यह धर्म था। बादमें इस धर्मकी साधनामें एक दिशा संभोग स्पृहा का नाश करने के लिए कृच्छ्र साधनाका मार्ग और दूसरी दिशामें अतिरिक्त संभोग से ऊबकर त्याग करने का मार्ग प्रकाशित हो चुका था। शाक्यमुनि बुद्धने इन दोनोंके बीचका मार्ग अपनाया था और वे अन्तिम जैनधर्मके प्रचारकसे भारत में हैं। वह अपने को साफ २ 'जिन' भी कहते थे।

शाक्यमुनि इतने बड़े क्यों हुए —

इस मध्यम मार्गके कारण 'जिन शाक्यमुनि' लोकप्रिय बने। यहाँ कहा जासकता है कि उनके द्वारा संस्कृत जनभाव 'गीता' में गृहीत है। उदाहरणके तौरे पर देखिये गीता बोलती है कि -

"युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥"*

* गीता— षष्ठ अध्याय, १७ वाँ श्लोक।

अर्थात्, जो जरूरत के मुताबिक आहार-विहार, कर्म की चेष्टा, निद्रा-जगरण करता है उसका योग दुख दूर करने वाला होता है। इसमें एक तरफ कृच्छ्र साधना और कर्ममें अतिनिष्ठा मना है और दूसरी तरफ भोग का स्वच्छदाचरण या यथेच्छाचार भी मना है। (यही शाक्यमुनि का सस्कृत जैनधर्म या बौद्धधर्म है, और महामहिम सम्राट अशोक ने बौद्धधर्म के रूप में इसी जैनधर्म को अपनाया था।) उन्होने एक दिन इस धर्म का प्रचार किया था और उसकाल के सभ्य जगत् में अहिंसा की साधना को कूट-कूट कर भर दिया था। इसलिए बौद्धधर्म का नाम फैल गया। (लेकिन ईसवी पहली सदी के पहले इस अध्यात्म या आत्म-स्वरूप-सेवा सस्कृत जैनधर्म या बौद्धधर्म में भक्तिधर्म पूरी तरह प्रवेश कर चुका था। उसी का नाम 'महायान' पड गया है। इसके पहले का बौद्धधर्म हीनयान बौद्धधर्म माना गया। महायान से पूर्व जो जैन थे उनमें से बहुत से हीनयानी कहे गये)।

पुरी के जगन्नाथजी इसका स्पष्ट निदर्शन है।

'जगन्नाथ' एक जैन शब्द है। यह ऋषभनाथ से मिलता-जुलता है। ऋषभनाथ का अर्थ सूर्यनाथ या जगत के जीवन-रूपी पुरुष होता है। ऋषभ का अर्थ सूर्य है। (यह प्राचीन बेबिलोन का आविष्कार है। Prof Sayce ने अपने Hibbert Lectures (1878) में साफ समझाया है कि इस सूर्य को वासन्त विषवमें देखकर लोग जानते थे कि हल करने का समय हो गया और वे हल जोतते थे। इसलिये कहने लगे कि वृषभ का समय हो गया। उस समय आकाशमें वृषभ राशिका आरम्भ होता है। इसीसे लोगो में सूर्यका नाम वृषभ या ऋषभ पड गया। इसके पहले लोगो में यह धारणा जम गई थी कि यह सूर्य ही जगत का जीवन है। अति प्राचीन मत्र

करने में असमर्थ हो कर गुद दंत के भक्त बन गये थे। उसी बीच क्षीरधर नामका राजा इस दंत के लिये पांडुराज पर आक्रमण करके खुद युद्ध में मर गया था। अन्त में जब वह राज्य छोड़ सन्यासी बने तब स्वयं पांडुराजने कलिंगराज गुहशिव के जरिये उस दंत को कलिंग में वापस भेज दिया था। गुहशिव इस दंत के लिये अपने दंतपुर में ही क्षीरधर के भतीजे के द्वारा अवरुद्ध हुए, इधर उज्जयिनी के राजकुमार ने आकर कलिंगराजकुमारी हेममालासे शादी की। गुहशिवने उन दोनों के हाथ दंत का भार सौंपा, दोनों का नाम हुआ दंतकुमार और दंतकुमारी, दोनों दंत को लेकर जहाज में सिंहल गये। उस हिसाब से मालूम होता है कि ३११ ई० में यह दंत सिंहल पहुँचा था। यह भी सिंहलके एक शिलालेखसे समर्थित होता है।

इसका उसके बादका इतिहास बहुत लम्बा है उससे मालूम होता है कि दंत नाना स्थानों में गया है। कलिंगसे सिंहल, सिंहल से ब्रह्मदेश और उसके बाद रोमन कैथलिक मिशनरियों के हाथ गोआ में पहुँचा है। और वहां मिशनरियों के द्वारा लिहाई पर चूरकर समुद्र में गया है। लेकिन सभी कहते हैं कि असली दांत हमने छिपा रखा है। दंत जिधर भी गया हैं या जिसने भी लिया है वह एक नकली दंत है। इसलिये ज्यादा लोग विश्वास करते हैं कि असली दंत अब भी कलिंग या पुरी में मौजूद है और जगन्नाथ जी के पेटमें ब्रह्मरूपमें है। आजके जगन्नाथ चतुर्धा जरूर हैं या सुदर्शनको छोड़ देवा है—जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा। इन तीन मूर्तियों के पेटमें दंतके तीन भाग ब्रह्मरूपमें रखे हैं या और कुछ है-इसके बारेमें कोई ठीक ठीक कह नहीं सकता। कुछ भी हो, इससे स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में जो सिंहलमें दंतका गल्प है वह पूर्ण रूपसे बुद्धदंत का गल्प नहीं है। कलिंगमें जैनोंके जिस जिनशासन पीठके होनेकी बात

पर अत्याचार करते थे। असुरो के पास थे बेबिलोनके प्रधान देव 'मर्दूक' वे भी असुरो से बिगडे हुए थे। वैसे असुर भी इन के सभ्यतर तथा सयततर आचरण को सहन कर नही सकते थे। इन दोनोके बीच लम्बे अरसे तक घोर विवाद चलता रहा बादको एक फारसी मध्यमपथी आर्य जराथ्रुष्ट (जिसका ऊँट पीला था) ने कहा—असुर और मर्दूक—ऐसे दो ईश्वर नही हो सकते। ईश्वर,एक है। और वह है 'असुर मर्दूक' या अहुरमेजदा इस अहुरमेजदा का एकेश्वरवाद फारस मे भूमध्यसागर तक दो सौ से अधिक साल व्याप्त रहा। यहूदी इस देशमें आकर गिरफ्तार हुए थे। कुछ कालके बाद इन यहुदियोको रिहा कर दिया। इनकी जातीय-देवताका नाम था 'जिउहे'। इन यहुदियो को वडा घमड था कि वे अपने देव के वडे प्यारे है। वे अपने को वडा देवभक्त मानते थे। अहुरमेजदा के बाद उन्होने अपने देवका नाम रक्खा 'जिहोवा' जो सारे ससार का एक ईश्वर बना दिया। इसीसे ईसा, महम्मद आदि पुत्र, दूत और अवतार हुए जिससे आज ससारमे धर्मकी मताधता तथा प्रतिक्रिया परिव्याप्त है।

इस धर्मकी प्रतिक्रिया

ऐसे अत्याचारके विरुद्ध आत्मज्ञानी लोगो का सिर उठाना स्वाभाविक है। वैसे लोग सोचने लगे कि सभोगकी स्पृहा या तृष्णा को छोडदेने से ही ऐसे राजाओ या सम्राटो के अधीन रहने के दुखसे मुक्ति मिलेगी। इन विरुद्धमतवालो ने जनसमाज को छोडकर, तृष्णारहित हो, वनमें पेड के फल और झरने के पानीमे गुजारा किया और पशुपक्षियो के साथ निश्चिन्त जीवन बिताया। उन्हीको देखकर हमारे देशमें एकबात कहीजाती है कि—

"स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्यते।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे क: कुर्यात् पातकं महत्॥"

but my choice is irrevocable; and I cannot escape the consequences of it This principle distinguishes Jainism from other religions, e.g. Christianity, Muhammadanism, Hinduism No God, or his prophet or deputy, or beloved, can interfere with human life The soul, and it alone is directly and necessarily responsible for that it does *)

इयावाणी और ऋष्यश्रृंग

वेबिलोन के प्राचीन इरेक राज्य में जो इयावाणी थे और भारतमें अगदेशके जो ऋष्यश्रृ ग थे,इन दोनोके उपाख्यानोका उल्लेख जरूरी है। इन दोनो उपाख्यानोमें विद्रोहके आदिम जैनोका निर्देश किया गया है इसतृष्णा-त्याग तथा इन्द्रियसयम में इनके लोकोत्तर आध्यात्मिक और शारीरिक वलके प्रकाश की वात इन उपाख्यनो से मिलती है। ये दोनो रहते थे वनमें, खाते थे फल फूल, पीते थे झरने का पानी और बसते थे पशु-पक्षियो के साथ, दोनो उपाख्यानो मे है कि स्थानीय राजाओं ने इन्हें सुन्दरी के लोभमें भुलाकर अपने शहरमें लाकर असाध्यसाधन किया था। भारतके ऋष्यश्रृंग का उपाख्यान इस इयावाणो (कुछ लोगो ने पढा है 'एकिडो') के उपाख्यान से मिलता जुलता है। फर्क यह है कि ऋष्यश्रृंग 'उपाख्यान' पुराण-परम्परा में उपलब्ध है, लेकिन 'इयावाणी—उपाख्यान' अत्यत प्राचीन लेख में मिलता है। उस हिसाव से यह आजसे ५००० साल से अधिक पुराने जमाने की बात है। यह उस जमाने के सुमेर देशके इरेक देशकी वात है।

थेरपुत्त

शाक्यमुनि बुद्धके धर्मका बौद्धधर्ममे 'सघो' का विकास-

---

*Outlines of Jainism by Jugmandarlal Jaini. PP 344.

ग्रामकोठ में बडे छोटेका विचार नहीं है। हर एक का हिस्सा बराबर है। जब गाँव बना तब भी हर एक को एक एक हिस्सा मिला था। इस हिस्से को पाने में सभी बराबर थे। किसीका ज्यादा न था, किसीका कम भी न था। ये एसीन्स शादी करके गृहस्थाश्रम नहीं करते थे। प्रमाण मिला है कि ये पूरपूर सन्यासी थे। लेकिन वंशपरंपराकी रक्षाके लिये नये शिष्य ग्रहण करके अपने गणकी वृद्धि करते थे। ये और मिश्री थेरपुत्त निरामिषभोजी थे। यह निरामिष भोजन न तो वैदिक है और न किसी दूसरे धर्मकी रीति है। इसमें कोई शक नहीं है कि यह तृष्णात्याग की साधनासे निकली है।

पैथागोरियन्स

(यह निरामिष भोजन प्राचीन ग्रीस् (यूनान) के पैथागोरियन्सो (ईसा के पूर्व ७ वी सदी के अन्तिम भागमें) और आरफिको (ईसाके पूर्व ७वी सदी के मध्यभाग में) प्रतिष्ठित था। और यह भी ज्ञात हुआ है कि इनकी धारणा थी-आत्मा अमर है। कर्मके अनुसार इस आत्मा का जन्मान्तर होता है। यह सब सिवाय जैनधर्मके और कुछ नहीं है, बाद को सक्रेटिस, प्लैटो, एरिस्ततल आदि मनीषी और पंडित इन पैथगोरियन और आरफिक धर्मके वंशधर और भूयोविकास के फल है। खास करके देखना हैं—सक्रेटिस और प्लैटो ने आत्माकी अमरताके बारे में स्पष्ट धारणा दे दी है। लेकिन एरिस्ततल ने अपने दर्शनशास्त्रमें जो कुछ लिखा है उस पर सांख्य के प्रकृति-पुरुष और जैनधर्मके जीवाजीव की छाया स्पष्ट हैं। और इस धर्मसे ईसाके पूर्व दूसरी सदीमें यूनानी स्तोईक और एपिक्युरियन धर्मका जन्म हुआ था। स्तोईक जैनसाधक और तपस्वी प्रतीत होते हैं। और एपिक्युरियन जैनको अपरसीमा अर्थात् लोकायत के उपादान से बना था।)

जमानेसे इसी रूपमें मातृदेवीकी पूजा हो रही थी, भारतमे ईसा के पूर्व २००० सालसे अधिक पहले लिंगोपासना के होने के प्रमाण महेन्-जो-दड़ोसे मिले है। लेकिन यह लिंग इसदेश के सभीदर्शनोंके प्रतीक हैं। और मातृदेवी को 'उमा' नामसे हैमवतीदेवी के रूपमें देवताओं को ब्रह्मविद्या सिखाने की बात केनोपनिषत्के तीसरे खण्डमें है। शायद, अम्मा उमामें परिणत हो गया है। और यह हैमवता अर्थात् हिमालयकी कन्या या हिमालय मे आविर्भूत देवी है।

सेमिरामिस

इस मातृदेवीके सम्बन्धमें ईसासे पूर्व १५०० या २००० साल पहले बेबिलान के उत्तरी सीमा में असुरो के देशमें रानी सेमिरमिस रहती थी। यह एक अद्भुत उपाख्यान है। देवी की प्रजनन परायणता तथा तद्विष क्रियाओ मे यह भरपूर है, शायद, यह किसी एक छोटी-सी स्मृतिको लेकर बना एक पुराण है। तो भी उसमें है-देवी इस कन्याको जन्मके बाद ही जंगल में छोडके चली गयी। कुछ कबूतर या पक्षियो ने इसकी हिफाजत की और उसे जीवित रखा। किसी गडेरियेने इसे देखा और घर ले जाकर पाल-पोसकर बडा किया। वह खूब हसीन और अक्लमन्द थी, कहते है-बेबिलोनकी इस्तर देवीके समान यह भी एक के बाद एकसे शादी करती थी और उसे मारकर दूसरे को अपनाती थी। इसके बारेमें परम्परा इतनी प्रबल और प्रतिष्ठित है कि अब भी उस इलाके लोग बडेबडे पहाड दिखते हुए कहते हैं-यहां सेमिरामिस के पति दफनाये गये है। और सेमिरामिस महापराक्रमशालिनी थी। कहा जाता है-सिर्फ भारत जीतने के लिये आकर पंजाब में हारकर लौट गयी।

शकुन्तला

शकुन्तला को कथा भी है-देवी या स्वर्वेश्याकी परित्यक्ता

होने के बहुत ही पहले दूसरी सभ्यजातिके लोग उसी कास्पियन झीलके दक्षिण तीरसे आकर इधर भारत और उधर बेबिलोन आदिमें फैले हुये थे। इनका सम्पर्क और आदान-प्रदान उस जमाने में बड़ा ही घनिष्ठ था।

अब मालूम होता है कि मातृदेवीधर्म या शविनधर्म के समान जैनधर्मके प्रथम अध्यात्म धर्म होने पर भी, उनके आस-पास कर यह जैनआदर्श तथा जैनसाधना मार्ग प्राग्वैदिक भारतमें, अर्थात् उस सभ्यजातिके द्राविड़ोंमें से विकसित हो कर पृथ्वी में व्याप्त हुआ था। लक्ष्मीनारायण जी ने उत्कल तथा भारतके आचार-व्यवहार में जैनधर्म के पूर्ण प्रभाव का होना दिखाया है। विशेषतः इसके सबधमें तत्वव्याख्या करते हुए उन्होंने जैन हरिवंश से नारद और पर्वत के उपाख्यान को लेकर एक अच्छा उदाहरण दिया है।

उपरिचर वसु

यह एक अत्यंत प्रदर्शक उपाख्यान है। और नारद और पर्वत का झगड़ा था यज्ञ में व्यवहृत 'अज' को लेकर। पर्वत का कहना था— 'अज' का अर्थ है बकरा या पशु, अतः पशुवध ही यज्ञका प्राण है। नारद ने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हों ने बताया कि अज के माने जिससे कुछ जात नहीं होता, अर्थात् पुराना अनाज। यहां हिंसा-अहिंसा-मूलक सामिष और निरामिष खाद्य का भेद प्रकीर्तित है। धर्म कौन-सा है? निरामिष भोजन या सामिषभोजन? भारत में यह समझानेकी कोई जरूरत नहीं। भारतमें सामिषभोजियो के होते हुए भी निरामिष हर एक का पवित्र और धर्मसम्मत भोजन माना हुआ है महाभारतके* नारायणीय उपाख्यानमें राजा उपरिचर वसुको चर्चा है। देवताओं और मुनियोंका यही झगड़ाथा। देव कहते

* वनपर्व-३३६ अध्याय से (वंगवासी संस्कार)

छिन्न-पल्लव

पंडित लक्ष्मीनारायण साहू एक ऐसे प्रख्यात् साहित्यकार है कि उनका परिचय देनेकी आवश्यकता नही। फिर भी पाठको की जिज्ञासा की पूर्तिके लिए सक्षपमें यहा पर उनका परिचय देना उचित है। वह उडीसाकी विभूति है। सन् १८६०ईसवी में उनका जन्म बालेश्वर जिलेके एक हलवाई वशमें हुआ था। वह जन्मे तो १६ वी शताब्दी में हैं, परन्तु उनका नाम और काम चमका २० वी शताब्दी में। उनकी विशेषता यह है कि यद्यपि वह एक नितान्त दरिद्र परिवारमें जन्मे थे किन्तु उनके कुटुम्बमें यह दरिद्रता आकस्मिक थी। वैसे उनके पितामह एक बडे धनी व्यापारी थे अकस्मात् प्रकृतिके कोपसे उनके पितामह की मृत्युके पश्चात् उनके पिताका सबकुछ घरबार, कोठा महल आदि और जहाज—व्यवसाय नष्ट हुआ था। लक्ष्मीनारायण बाबू बचपनमें अपने पिताकी दूकान पर बैठकर मिठाई बनाते और बेचते थे। किन्तु उनका उज्ज्वल भविष्य उनके जीवनकी कनखियोसे झांक रहा था। उनकीप्रतिभाको देखकर बालेश्वर जिला स्कूलके प्रधानअ०श्री लोकनाथ घोष उनपर सदय हुयेऔर उनकी ही सहृदयतासे इनको अधिक उच्चशिक्षा पानेका सुयोग मिला, सन् १६०८ मे बालेश्वर जिला स्कूल से ऐंट्रेन्स पास किया। सस्कृतमें एकपदक और एकवृत्ति भी उनको मिली थी।

इसके बाद ज्यो त्यो करके उन्होने कटक रेवेन्सा कालेज में दीक्षा पाई। मार्गकी अनेक विघ्न-बाधाओ और दु ख दूर-वस्थाओ को पार करके वह आई०एस-सि० परीक्षा में उत्तीर्ण

हुए। उसके बाद कलकत्तामें शिवपुर इनजिनियरिंग कालेज में दो वर्ष ही पढ़ पाए कि अर्थाभावके करण छोड़कर चले आए। उपरान्त शिक्षा-व्यवसाय उनको रुचिकर हुआ। वह पुरी विक्टोरिया होटल में मैनेजर हुये और फिर कटक, मिशन स्कूलमें चार वर्षों तक शिक्षक रहे। वहा से उन्होने बी० ए० और संस्कृत मध्यमा आदि पास किए। गीतामें उनको 'तत्वनिधि' उपाधि और वगला साहित्यमें दक्षताके लिए 'विद्यारत्न' उपाधिभी मिली।

मिशन स्कूल छोडकर उन्होने भारत सेवक समितिमें योग दान देनेके लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। आजकल भी उस समितिके सदस्य है और उसका काम करते हैं। अब उस समितिका नाम परिवर्तन होकर "हिन्द सेवक समाज" हुआ है। बालकपन से ही वह समाज सेवामें मस्त थे और एक धर्मिष्ट हिन्दूकी तरह निष्ठाके साथ जीवन विताते थे। गणेश, सरस्वती, कार्तिक, आदि सव देवताओंकी मूर्तिपूजा करते थे। अकस्मात् उनके जीवनमें परिवर्तन हुआ वह जीव मात्रकी सेवा करनेमें लगे। भगी गांवमें सबके साथ मिलते और रोगी भगी बच्चोकी अपने पुत्रके समान देखते थे। कटकमें मुसलमान लोगोके साथ मिलते थे और इसके बाद आर्य समाजमें हवन आदि करते थे ईसाइयो से भी परिचित थे। इसप्रकार वह यौवनकी ओर एक समुदार दृष्टि लेकर बढे थे।

बहुत क्या कहें? लक्ष्मीनारायण बाबू एक कवि, एक साहित्यकार और एक समाज सेवक हैं। अपने जीवनमें उन्होने साठ अमूल्य ग्रंथोकी रचना की है, जो अंग्रेजी, उडिया और वगला भाषाओ में है। हिन्दीमें उनकी यह पहली पुस्तक है, जिसे वह अपने मित्रोके सहयोग से अनूदित कर सके हैं। किंतु साहित्यकार होनेके साथ ही उनका हृदय दया और अनुकम्पा से परिप्लावित है। यही कारण है कि उन्होने कुष्ठ रोगियोकी

भी सेवा करने जैसा जोखिमभरा काम करने में आनन्द अनुभव किया है। जब जब दुर्भिक्ष पड़े और बाढ़े आई तब तब आसाम, बंग, विहार, ओडिसा, हिमालय आदि स्थानोमे जाकर लोकसेवा के कार्य किये है। इस वृद्धावस्थामें उनका सम्मान राष्ट्रने किया है। आप को राष्ट्रपति द्वारा "पद्मश्री" उपाधि प्राप्त हुई है। विद्यापीठ आन्ध्र इतिहास प्रत्नतत्व समितिसे "भारततीर्थ" और अ० विश्व जैन मिशनके विद्यापीठसे "इतिहासरत्न" आदि उपाधिया भी उन्होने प्राप्त की हैं। विद्यारसिक ऐसे है कि अग्रेजी आधुनिक भारतीय साहित्योमें तथा अर्थनीति और इतिहासमें एम०ए० प्राईवेट पास किया है।

वह जीवनकी गहराईमें बहुत तैरे हैं और महानदियो के तैराक भी रहे है। मलानदी, विरूपा, शिवपुर और खिदिरपुर के पास गगानदीमें इस पार से उस पार हुये और पुरी समुद्रमें ७-८ मीलतक अन्दर तैर आये थे। इलाहाबादके निकट गगा यमुना के सगममें भी तैरे थे। पदयात्रा करनेमें भी वह निपुण हैं। हिमालयमें दैनिक २६ मीलतक चलना और समतल भूमिमें दैनिक ४०—५० मीलतक चलना, ये सब कुछ उन्होने किये है।

लक्ष्मीनारायण बाबू लोक परिचित एव प्रख्यात् होने पर भी कभी कभी शोकाको अनुभव करते है। लेकिन अपने सब दुःख को वह कविता और ग्र थ रचना करके भूल जाते है। यह उनकी विशेषता है। भारतवर्षका पर्यटन भी उन्होने कई दफा किया है और बहुत जगहोंके दर्शन किये है। अत· उन के प्रेमी बन्धुवर्ग असख्य है। आज उनकी ६८ वर्षकी आयु है, फिर भी उनमें एक युवक को सेवा-लगन और उत्साह है वह शतजीवी होकर कल्याणमूर्ति बनें, यह प्रार्थना है

गणेश चतुर्थी—
आश्विन १, २३६५ — *प्रकाशक उड़िया पुस्तक*

विषय-सूची

१. जैनधर्म का स्वरूप १

२. जैनधर्म की ऐतिहासिक भूमिका १५

३. कलिङ्ग में आदि जैनधर्म २९

४. खारवेल और उनका कालनिर्णय ३९

५. खारवेल का शासन और साम्राज्य ५५

६. खारवेल और जैनधर्म ६१

७. कलिङ्गमें खारवेलके परवर्ती युगमें जैनधर्मकी अवस्था ७८

८. उत्कल की संस्कृति में जैनधर्म ८४

९ उडीसा की जैनकला ९८

१०. उपसहार १३२

११. परिशिष्ट १—खडगिरि की ब्राह्मीलिपि १३४

१२. „ २—ओडीसा में जैनोंका निदर्शन १४२

१३. „ ३—ओडीसा के जैनी और खंडगिरि उदंयगिरि की गुफायें १४६

भ० शान्तिनाथ की पाषाण मूर्ति (कटक के जैन मंदिर में स्थित)

उड़ीसा में जैनधर्म

—डॉ० लक्ष्मी नारायण साहू

१. जैन धर्म का स्वरूप

भारतमे आदिकालीनका चिंताशील व्यक्तियोके भूयोदर्शनसे उत्पन्न ज्ञान-पुञ्ज को वेद कहते हैं। यद्यपि विभिन्न कालमें विभिन्न विषयोका ज्ञान ऋषियोको उपलब्ध हुआ, परतु फिर भी उसका संग्रह मन्त्र और सूक्तके रूपमे अत्यन्त मूल्यमय सचयन ही कहा जायगा। परवर्त्तीकालमें उस अपूर्वज्ञानका विभक्तीकरण विषयो के भेद से किया गया। ऋषियो ने उसके द्वारा परिदृश्यमान जगत्की रचना और आश्चर्यकारी स्थितिके मूल-तत्त्वो का निरूपण करते हुए विभिन्न मतोका प्रचार किया। ऋग्‌वेद (म०५-सू०१०) में केशी तथा दिगबरका जो वर्णन है वह जैनियो के भ० ऋषभ और हिंदुओके शिवजी को अभिन्न सिद्ध करता है। इससे "वेदु - होइला नाना गति"—इस 'भागवत'- वाक्यकी सार्थकता निस्सदेह प्रतिपन्न होती है। इसके अतिरिक्त "जैन हरिवश" ग्रन्थमें नारद और पर्वत—दोनो ऋषियो में वेदार्थ को लेकर जो विवाद हुआ, उसका वर्णन भी इस उक्ति की सार्थकताका पोषक है। नारद और पर्वत के आख्यान का साराश इस प्रकार है।

एक वार "अजैर्यजेत्" इस वैदिक-वाक्यके अर्थके बारेमें आलोचना हो रही थी। पर्वत ने इस वाक्य का अर्थ वताते हुये "अज" शब्द को चतुष्पद पशु विशेष के अर्थ में प्रतिपादित किया जिस से 'पशु यज्ञ' का विधान हो, परंतु नारद ने उस अर्थ को स्वीकार न कर दूसरा अर्थ वताया कि "अज" शब्दसे

साथ तीन वर्ष पुराने धान्य (धान) से है जो उग न सके। उनके चावलों द्वारा यज्ञ करना चाहिये। किन्तु इतने में ही यह आलोचना समाप्त न हुई। तीसरे व्यक्ति के द्वारा इसका समाधान कराने के लिये वे दोनों एक राजाके पास गये। उन की सभा में अनेक युक्ति एवं तर्क विवेचना के बाद नारद का मत यथार्थ रूपसे पुष्ट हुआ। इसप्रकार पर्वतने पराजित होने पर दूसरे राजाकी सहायता से पशु हिंसा द्वारा यज्ञ करनेके नये मत का प्रचार किया। नारद अहिंसा के प्रचार में लगे रहे। इस तरह हिंसा और अहिंसा के रूप के भेद से एक वेद की दो शाखायें बनी। आपस में यह दो शाखायें प्रशाखाओं और पल्लवों के विस्तार से परिवर्द्धित होकर पुरातन वट वृक्ष के प्ररोह की तरह स्वतन्त्र वृक्ष के रूप में परिणत होकर ब्राह्मण और जैन के नामसे अभिहित हुई। क्रमशः उभय गोष्ठी की उपासना और आचार की प्रणाली भिन्न होने लगी और दोनों एक ही वृक्षके दो प्ररोह थे—यह बात स्मृति के बाहर चली गयी। यद्यपि जैनभी इस बातको मानते है कि भ० ऋषभदेवजी के शासनमें आर्य वेद रचे गये थे और नारद–पर्वत संवाद के समय तक भ० ऋषभ देवका अहिंसाधर्म प्रचलित था। अतएव विचारसे यह प्रतीत होता है कि मूलमें ब्राह्मण और जैन-दोनों धर्म एक परिवार के हैं। जैनधर्म बौद्धधर्म से अधिक प्राचीन है। बौद्धोंके धर्मग्रन्थोंमें लिखा हुआ है कि भ० ज्ञातृपुत्र महावीरके शिष्योंने अनेक बार भ० बुद्धके साथ शास्त्रार्थ किया था। बुद्ध ने स्वयं ही अनेक स्थलों में निर्ग्रन्थ तथा आजीवकों के मत का विरोध किया था। भ० महावीरके सन्यासी होनेके पहले सेही जैनधर्म प्रचलित था।[1] पहले अनेकों की धारणा ऐसी थी कि बौद्ध

(1) Sacred Book of the East (Jain Sutras(by Dr Jacobi Introduction,

धर्म से जैनधर्म को उत्पत्ति हुई है, परन्तु यह बात भ्रमात्मक है। जैनधर्म बौद्धधर्मसे अति प्राचीन है,इसमें सदेहके लिए स्थान नही है। भ० महावीर जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर हैं। वह वृद्ध के समसामयिक थे। बुद्धकी तरह उनका जन्म राजवंशमे हुआ था। निहत्थे एक मस्त हाथी को दमन करने तथा उपरान्त महा कठिन तपस्या करने के कारण उनको 'महावीर' जैसे गौरवमय उपनाम से पुकारा गया।

भ०महावीरने उत्कलमें आकर जैनधर्मका प्रचार किया था। उत्कलमें उनके धर्म का मुख्य केन्द्र कुमारी पर्वत (आजका खण्डगिरि) था। किन्तु उड़ीसा के महेन्द्र पर्वत मे आदि तीर्थंकर ऋषभ का भी आस्थान था। आजकल महेन्द्र पर्वत मजुसा में है और राजकीय उडीसा में न हो कर आध्र में गिना जाता है। इन उल्लेखोसे उत्कल (उडीसा) में जैनधर्मकी प्राचीनता का बोध होता है।

भ० बुद्ध के समसामयिक होने के कारण कई लोग भ० महावीर को बुद्धवशीय कहते थे। परन्तु ऐसा कहना ठीक नही; क्योकि भ० महावीर ज्ञातृक क्षत्रिय वशके थे। हा, यह कहना अवश्य ही सच है कि उत्कलमें युगपत् हिन्दू, जैन-तथा बौद्ध धर्म का प्रचलन था।

भ० महावीर कुण्डग्राम के ज्ञातृक-क्षत्रिय राजा सिद्धार्थके कुलमें जन्मे थे। उनके जन्म लेनेके साथ ही,वल्कि उसके पहले से ही, उनके कुल की और राष्ट्रकी धन एव ऐश्वर्यमें वृद्धि होने के कारण उन का नाम 'वर्धमान' रक्खा गया। और सभी की यह आशा एव अभिलाषा थी कि राजपुत्र वर्धमान अपने पिता के राज्यकी समृद्धि बढायेंगे, परन्तु वह स्वय जन्मसे ही जिनेन्द्र भगवानकी तरह साधु बननेकी लगनमें थे। युवावस्थामें राजैश्वर्य को लात मारकर उन्होने अरण्यमें जाकर कठोर तपस्या आरभकी

ग्रौर ग्रतमें सिद्ध काम वनकर जिनदेव हुए। उनको ग्रविद्या दूर हुई ग्रौर वे सर्वज्ञ वने। उन्होंने दीर्घ काल ग्रर्थात् ४२ वर्षो तक जैनधर्मका प्रचार किया। उत्कलका कुमारी-पर्वत उनका प्रधान सघपीठ था ग्रौर वहींसे जैनधर्मके ग्रगणित कल्याणकारी तरग ग्रगणित दिशाग्रोमें फैले थे। इसके बहुत वर्षोवाद, सम्राट ग्रशोक कलिग विजय में घोर नरसहार देखकर ग्रनुताप से दग्ध हृदय हुये। ग्रौर फिर बौद्धधर्म को ग्रहण करके उसके प्रचार में लग थे। 'देवाना प्रियदर्शी" के उप-नाम से वह प्रसिद्ध हुए थे। फलत बौद्धधर्मका प्रचार विभिन्न दिशाग्रो में व्याप्त हुग्रा। किन्तु यह सबकुछ होने पर भी उत्कल में जैन धर्म ग्रपना सिर उठाये रखकर ग्रपनी रक्षा करता रहा। काल-चक्र के ग्रावर्त्तन से उत्कल फिर स्वाधीन हुग्रा ग्रौर ईसा से पहले पहली शतीमें यहा खारवेल राजा हुए। भारतके विभिन्न स्थानो की दिग्विजय करके जैनधर्मकी कल्याणकारी तरगको उन्होंने ग्रधिक व्यापक कर दिया।

भ० महावीर से २५० साल पहले भ० पार्श्वनाथ ने जिस धर्म का प्रचार किया था उस धर्मको श्वेताम्बर लोग चातुर्याम कहते हैं, क्यो कि उस में चार व्रत थे। यथा—ग्रहिंसा, ग्रचौर्य्य, ग्रनृत ग्रौर ग्रपरिग्रह। इस चातुर्याम धर्म का सस्कार कर के भ०महावीर ने उसको पचयाममें परिणत किया। उन का ५ वा व्रत है ग्रात्म सयममय ब्रह्मचर्य। इसके ऊपर उन्होंने विशेष जोर दिया था (१) दिगम्बर जैन शास्त्रो में ऐसा उल्लेख तो नही मिलता परतु उन में भी भ० पार्श्वनाथ ग्रौर भ० महावीर के ग्राचार धर्म में कालभेद से ग्रन्तर वताया है। भ० पार्श्वनाथ के सघ में सामायिक चरित्र प्रचलित था ग्रौर भ० महावीर के सघमें छेदो-पस्थापना चारित्र का प्रावल्य था।

(2) Indian Antiquary Vol. ix. pp 160 61

मौर्योंके कालसे जैनधर्ममें मतभेदका बीज पड़ा था, जिससे ईस्वी पहलीं शताब्दी में वह दो भागोमें विभक्त हुआ था। उस समय जैनधर्मके दो प्रसिद्ध आचार्य भद्रबाहु और स्थूलभद्र नामक थे। भद्रबाहुसे दिगम्बर सप्रदाय का आरम्भ हुआ और स्थूलभद्र से श्वेतांबर सप्रदायका। हरिषेणकृत "कथा कोष" में लिखा हुआ है कि १२ साल तक दुर्भिक्ष पडने की बातको जानकर आचार्य भद्रबाहु ने अपने शिष्योको दक्षिण चले जाने के लिए कहा था और वे स्वय उज्जयिनी जाकर वहा अनशन व्रतके द्वारा समाधिस्थ हुए थे।

बौद्धो के "पिटक" ग्रन्थ की तरह जैनियो के "सिद्धान्त" ग्रन्थ भी हैं। वह हैं "अङ्ग और पूर्व" भद्रबाहुने इन सब सिद्धांत ग्रन्थो का परिशीलन किया था। श्वेताम्बर मानते हैं कि इस समय ई० पू० ४सदीमें अङ्ग ग्रन्थोका सकलन हुआ था। उस से पहले गुरुमुखसे जैनधर्मका प्रचार होता आरहा था। उपरान्त ५५४ई०में वल्लभीमे श्वेताम्बरजैनियोकी एक महासभा आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण के नेतृत्वमें बैठी। उस सभामें जैनधर्मके उन ग्रन्थोका सकलन किया गया जो आज श्वेताम्बरीय आगम साहित्य है।(३)अत देवर्द्धिगणिको श्वे०जैनियोंका बुद्धघोष कहा जासकता है। जैनियो सारी बाते इन ग्रन्थोमे लिपिबद्धकी गयी है।

जैनधर्मके अनेक ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं, जिनको "पूर्व" कहते थे। फिर भी जैनियोके अनेक ग्रन्थ हैं।

दिगम्बर जैनियोका साहित्य भी अति उच्च कोटीका है। लेकिन वह प्राय अप्रकाशित ही है। उनके मतानुसार अङ्ग-पूव ग्रन्थ मुनिवरो की स्मृति क्षीण होने से लुप्त हो गये। उनका कुछ अश जो श्री-धरसेनाचार्यको याद था वह उन्होने पहली शतीमें गिरिनगर में लिपि-बद्ध करा दिया था। वह सिद्धात

(३) शाह "उत्तर भारत मा जैनधर्म" (बम्बई)

ग्रन्थ प्रकाशित भी हो रहे हैं।

इन सब धर्म ग्रन्थोके अतिरिक्ति जैनियोके विभिन्न पुराण और इतिहास भी है। वे सब से निराले है। इनके अतिरिक्त जैन व्याकरण, भाषाकोश, अलकार, और आयुर्वेदादि के ग्रन्थ भी है। शायद अमरकोष भी एक जैन ग्रन्थ है।)

(यद्यपि उत्तर भारतमे ही जैनधर्मका जन्म हुआ, परन्तु फिर भी दक्षिण भारत मे उसका विशेष प्रचार हुआ। जैन प्रचारको ने मदुरा और त्रिचनापल्ली आदि स्थानो मे जाकर जैनधर्मका प्रचार किया था। और साथ साथ तामिल साहित्य की भी श्री वृद्धिकी थी।) आजकल जो तामिल व्याकरण "थोल्कपिययम्" प्रचलित है वह एक जैनग्रन्थ ही है। कन्नड साहित्यके सम्बन्धमें भी यही वात है। वास्तवमें जैनलोग उस समय अत्यन्तप्रसिद्ध थे।

जैनधर्म मूल से अन्त तक निवृत्ति मार्गका द्योतक है। इसीलिये उसमे भक्तिकी भावधारा नही दिखाई पडती। जबसे देशमे महादेव के स्तोत्र और गीतादि का प्रचलन शुरू हुआ तब से जैनधर्मका क्रमश ह्रास होने लगा। अकस्मात् नूतन, सरस तथा सहज भक्तिके स्रोतके उमड आने से कठोर, वैराग्य से भरा हुआ जैनधर्म प्राय लुप्त होने लगा और उसके स्थान पर शैव धर्म फैलने लगा। इस विकट परस्थितिमे भी जैनधर्म बहुत लम्बे काल तक प्रभावशाली रूपसे जीवित रहा, किन्तु समयके प्रभाव से वह धीरे२ सभी दिशाओसे हटकर अब मुख्यत राजस्थान और गुजरात में जिन्दा है। वैसे आज भी जैनी सारे भारतमें थोडे बहुत फैले हुए मिलते हैं। और कुछ विदेशो में भी पहुच गये है।

(जैनधर्मका मूल तत्त्व यह है कि संसार एक प्राकृतिक प्रवाह है। लोकको किसी ने बनाया नही। जब आत्मा या जीव इस सत्यको समझता है तब वह अविद्याको जीतकर के बोधि अर्थात् आत्म ज्ञानका अधिकारी होता है। लोकमें जीव और पुद्गल

नेमि, पार्श्वनाथ, महावीर कोई किसीसे कम नही थे। २४ तीर्थंकरो को मिलाकर जैन लोग कुल ६३ शलाका पुरुषों को स्वीकार करते है। वे है—

२४ तीर्थंकर
१२ चक्रवर्ती
९ वलदेव
९ नारायण (वासुदेव)
९ प्रति नारायण (प्रति वासुदेव)

ये ६३ शलाकापुरुष हैं, जिनका विशद विवरण निम्नप्रकार है

२४ तीर्थंकर—ऋषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चद्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयाश, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथनाथ, अरनाथ, मल्ली, मुनि सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ, महावीर। तीनों चक्रवर्ती

१२ चक्रवर्त्ती—

भरत, सगर, मघवान्, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, सुभौम, पद्मनाभ, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त।

९ वलदेव—अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, रामचन्द्र, पद्म।

९ नारायण या वासुदेव—

त्रिपृष्ट, द्विपृष्ठ, स्वयभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्तदेव लक्ष्मण, कृष्ण।

९ प्रतिनारायण या प्रतिवासुदेव—

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु, निशुंभ, वालि, प्रहलाद रावण, जरासध

जैनधर्ममे वीरत्वकी गाथा निराले ढगसे की गई है। उस में त्याग की कथा या अपने को जीतनेकी कथा है। सच्चा जैन वह है जिसने अपने को जीता है यानी सारी वासनाओ और प्रवृत्तियो को अपने वशमें कर रक्खा है। जिसने निजको जीत

भासित है। इस निष्कर्ष को भूल कर हम विभिन्न देव देवियों की आराधना में मग्न रहते हैं- बाहर की शक्ति की पूजा करते हैं। आश्चर्य है, व्यक्ति मुक्ति को बाहर ढूंढ रहा है।

मानव तथा अन्य जीवोंके साथ ऐक्य और सखाभाव स्थापन करना जैनधर्मका प्रबलतम उपदेश है। इसीलिये जैनियोंने अहिंसा की नीति को अत्यंत निगूढ भावसे ग्रहण किया है। वे लोग रात में भोजन इसलिये नहीं करते कि रातमें दीप जलाने पर उसमें कीट पतंग गिरकर मर जाते हैं। यहां तक कि पानी को छानकर पीते हैं और उसका परिमित उपयोग करते हैं जिस से कि जलकाय के छोटे छोटे जीवाणुओं का नाश न हो।

पृथ्वी के इतर धर्मोंकी भांति जैनधर्म में हिंसक-युद्धों का घनघोर या पशुबलपरक वीरत्वका परिप्रकाश दिखाई नहीं देता। जैनधर्ममें शान्ति, सौहार्द, प्रीति, संयम, अहिंसा, और मधुर मैत्री आदि विशेषतायें विद्यमान हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक और व्यावहारिक विचारसे जैनधर्म ने मानव जीवन को सुन्दर करनेका विधान किया है। किसी भी जीवकी हिंसा न करना और उस साधन से मोक्ष का लाभ करना जैनधर्मकी सबसे बडी विशेषता है। बौद्धधर्मके निर्वाण में अन्त में शरीर का ध्वंस करना पडता है, लेकिन मोक्षके लिये अपनेको ध्वंस करनेकी बात जैनधर्म में नहीं है। उसमें अपने को जीतकर जगत की सेवामें लगनेकी बात है। यही है सच्चा मोक्ष। बडे आश्चर्य की बात है कि ऐसा धर्ममत भी संसार में समर्द्धित और व्याप्त न हो सका। मेरे विचारसे इसका कारण यह हो सकता है कि मानव के हृदय में शान्ति की स्पृहासे युद्ध की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में बैठती है। उस प्रवृत्ति का समूल विनाश करना जैन धर्मकी प्रधान चेष्टा है। इसलिये धर्म प्रचारकोंके द्वारा पृथ्वी के विभिन्न प्रान्तों में धर्मके लिये युद्ध सृष्टि की चेष्टा जैनधर्म

पद्धति हिंदूधर्मसे प्रभावित होने पर भी उसके ऊपर जैनियोंका काफी प्रभाव पडा है। शायद इसीलिये हरप्रसाद शास्त्रीने इन को बौद्ध कहा था। लेकिन शास्त्री जी से बहुत पहले पण्डित डाल्टन ने इनको जैन कहा है[१]।

(१) Chuhanghen, by Dalton; J. B O R S Vol. XII Part III में S. N. Roy का Saraks of Mayurabhanja देखिये।

दक्षिण कोशल और गगराडी। ये छ राष्ट्र कभी एक चक्रवर्त्तीके अधीन रहते थे तो कभी स्वाधीन हो जाते थे। उस जमानेकी परिस्थिति और राजकीयविकासका यह हाल था। मगर अचरज की बात यह है कि इन राष्ट्रोंकी सस्कृति और सभ्यता एक थी और एक ही मार्गसे और एक ही क्रमके अनुसार इनका विकास होता रहता था।

वस्तुत गगासे लेकर गोदावरी तक और पूर्वी समुद्रसे लेकर दण्डकारण्य तक उत्कल विस्तृत था[३]/कालक्रमसे दक्षिणकोशल का कुछ अश उससे अलग हो गया और शेपका नाम त्रिकलिग पड गया। इस नामको लेकर प्लीनी मेगास्थिनिस आदि विदेशी पर्यटकाने अपने अपने भ्रमणवृत्तान्तोंमें उत्तर कलिग, मध्य कलिग और दक्षिण कलिगका नामोल्लेख किया है।

'उत्कलमें जैनधर्म'- कहनेका अर्थ व्यापक होना चाहिये। देशके आचार-विचार, सस्कृति, धर्मग्रन्थ, काव्यपुराणादि साहित्यिक ग्रन्थ, शिल्प, स्थापत्य आदि बातो पर किसी भी धर्मके प्रभावका विचार अवश्य होना चाहिये। यह युक्ति सिर्फ उत्कल के लिये नहीं, बल्कि किसी भी राज्य या प्रदेश के लिये लागू है। किन्तु उससे पहले उस धर्मके संस्थापक प्रचारक और धर्म की नीतिके बारेमें विचार करना भी आवश्यक है। किसी भी धर्मकी प्रतिष्ठा, प्रचार, परिवृद्धि, प्रकाश और पराकाष्ठा उस धर्मकी महत्ता, उसके प्रचारकोंके साधुस्वभाव, विशिष्ट निर्मल जीवन तथा उच्च आदर्श प्रसगके क्रमसे अपने आप सामने आ जाते हैं। इस बात को सामने रखकर जैनधर्मकी गवेषणा या अनुशीलन करते चलेंगे तो हमें ईसाके पहले आठवी सदी तक या और पीछे जाना होगा। भारतके इतिहासके बारेमें हमें ईसा के जन्मसे पहले सातवी सदी तकका पूरापूरा विवरण ठीक रूप

[३]- कूर्मपुराण

भाई भी[६] इनसे इन्हें (नेमिनाथको) ईसा जन्मसे पहले चौदहवीं सदीके कह सकते हैं। यह निर्णय पुराणोंके सहारे कियाजाता है।

पुराण वर्णित महाभारतके युद्ध से लेकर चन्द्रगुप्त साम्राज्य तक का काल एक क्रमके साथ निर्णित हैं। दस बारह साल के हेर फेर के होते हुए भी उस जमाने के दूसरे विवरणात्मक इतिहास के द्वारा समर्थित है। जो हेर-फेर दिखाई देता है वह केवल चान्द्रमान और सौरमान के कारण ही, इससे सिद्ध होता है कि अलग अलग धर्म-प्रचारकों के जीवनकाल का फर्क २५० से ५०० सालके भीतर ही है। ऐसा होना स्वाभाविक है। किसी नवप्रवर्त्तित धर्मकी दीक्षा कुछ कालके बाद अपनी निर्मल ज्योति खोकर मलिन हो जाती है। यह इतिहास की चिरन्तन रीति है। इस मलिनता को दूर करके नवीन धर्मका प्रवर्त्तन या संस्कार के लिये लोकगुरुओं का आविर्भाव हुआ करता है। इस दृष्टिकोण से विचार करनेसे मालूम होता है कि अरिष्ट-नेमि से पहले जो २१ तीर्थङ्कर हो गये हैं उनके समय के अन्तर की गिनती करने पर आदिनाथ का समय करीब ईसा से पहले ३००० साल का हो जाता है*। मिश्री, बाबिलनीय और सुमेरीय आदि प्राचीन सभ्यता के काल के हिसाबसे तथा महेन्-जोदाडो, हरप्पा और नर्मदा की उपत्यका में पुरातत्वात्त्विक गवेषण से जिस कालका निर्णय हुआ है, उससे इस काल

६— ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमितिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रगुप्रभु, सुविधिनाथ, पुष्पदन्तनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरनाथ, मल्लीनाथ मुनिसुव्रत, नमिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ, महावीर।

* जैन मान्यताके अनुसार ऋषभदेव भोगभूमिके अन्त और कर्मभूमिकी आदिमें हुए, जिससे अनुमान होता है कि ऋषभदेव पाषाण युगके बाद कृषियुग में हुए थे। अ० नेमिका समय भी प्राचीन है। —का० प्र०

फलस्वरूप पैदा हुए थे। ऋषभदेव सब प्रजाप्रिय थे और शास्त्र के विधानोंको मानकर राज काज चलाते थे। बुढ़ापे में उन्होंने वानप्रस्थाश्रम अपनाया था। उनकी कई रानियां थीं।

एक दिन नीलञ्जना नामकी एक नर्तकी के नाच-गान के निमित्त से भ० ऋषभ संसारसे मुंह मोड़कर महलोंके बाहर चले गये और बहुकालके बाद तपस्याम सिद्धिलाभ करके अपने अहिंसा पूर्ण धर्मका प्रचार करने लगे। उनके प्रथम सौ पुत्रों ने राजत्वके बाद यतिव्रत अपनाया था और दूसरे पुत्र भी ऋषि हो गये। अहिंसा की दीक्षा लेकर ऋषभदेव यज्ञोंमें पशुबलि न करने के लिये योग साधना करने का उपदेश सबको देते थे'।

बाद के तीर्थंकरोंने प्राणिहिंसा न करने के लिये जिन नियम को स्वीकार किया उनका पालन होता रहा किन्तु जब यहाँ पर असुरोंका प्रकोप हुआ तो अहिंसा प्रधान गार्हस्थाश्रम चलाना नामुमकिन हो गया। धर्मके कड़े कानून और शुष्क नीतियां लोगों को अनुप्राणित न कर सकीं। इसीलिए ऐसे एक शुष्क ज्ञानमार्ग और निवृत्तिपर धर्मके प्रवृत्ति पर समाजमें बारबार मार्जन और नये नये संस्कारों के होने में आश्चर्य करने की बात ही क्या है? हिन्दुओं के पुराणोंमें भी कितने ही सिद्ध दिगम्बर साधुओंके नाम सम्मानके साथ उल्लिखित पाये जाते हैं। वे जैनी दीक्षाके मूलमंत्र और मूलतत्त्वको ग्रहण करके निर्लोभ हो नगरोंमें घूमते थे। इसतरह २१ तीर्थंकरों के अवतारके बाद महाभारत युगके अरिष्टनेमि का नाम हमें मिलता है। उस जमाने में अरिष्टनेमि का लोगोंमें बड़ा आदर था। लगता है कि श्रीकृष्णजीकी भगवत्ता का प्रचार तब तक नहीं हो पाया था। अरिष्टनेमि के नामसे जो संस्कृत पुराण प्रकाशित है उसे जैन हरिवंश कहते हैं। हमारे हिन्दू हरिवंशके साथ साधारण सादृश्य रखते हुए भी यह 'हरिवंश' जैनों की

हो कर उनसे शादी करना चाहती थी, लेकिन कलिंगके राजा और दूसरे राजे भी प्रभावती को पाने के लिये लालयित थे फल स्वरूप लड़ाई छिड़ी, राजा प्रसेनजित ने लड़ाई के लिये पार्श्वनाथ की सहायता मागी। आखिर पार्श्वनाथ ने लड़ाईमें कलिंग को हरा कर प्रभावती से शादी की। खण्डगिरि में अनन्तगुफा की पार्श्वनाथ की मूर्ति के ऊपर एक साप है, यह उल्लेखनीय पार्श्वनाथ का एक खास चिन्ह है। महेन्द्र पर्वत की पार्श्वनाथ मूर्ति सहस्रसर्पों के फनों से आच्छादित है।

श्रमण भगवान महावीरजी ईस्वी पू० ५५७ में अपने जीवन की ४२ साल की उम्र में तीर्थंकर बने थे। ७२ सालकी उम्र में ईस्वी० पू० ५२७ में इन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। जृम्भिक नाम के गावमें इन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया था और बारह वर्ष तक गभीर चिन्ता और अन्तर्दृष्टि के साथ जीवन बिताने के बाद उनको ज्ञानलाभ हुआ, तीर्थंकरोंमें उनका स्थान सर्वोत्तम है। कल्पसूत्र, उत्तरपुराण, त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र और वर्द्धमान चरित आदि जैनग्रन्थों में उनकी जीवनी का विस्तृत वर्णन है। जैनधर्ममें उनका स्थान अप्रतिहत और अद्वितीय है। २४ तीर्थंकरो में श्रेष्ठ तीर्थंकर के रूपमें उनकी गिनती होती है। इसलिये उनका लाञ्छन 'सिंह' रहा है।

जैनों के २४ तीर्थंकरो में से १८ तीर्थंकरोंने मगध, अग तथा बगमें देहत्यागकर निर्वाणलाभ किया है। एक समय जैन धर्म पश्चिम भारतमें भी व्याप्त था, फिरभी मगध, अग, वग और कलिंग इस धर्मके मुख्य क्षेत्र थे। मगध तथा कलिंग के सम्राज्यका धर्म बन जाने के कारण देशमें इस धर्मका महत्व जितना बढ़गया था बौद्धधर्मका महत्व उतना नहीं बढा था।

किसी भी धर्मके सुदूर विस्तारकी प्रतिष्ठा के लिये कमसे कम चार-पाच सदियोंकी अपेक्षा है। शाक्यसिंह का वेदविरोधी

और मध्या मत परिपूरक बौद्धधर्म चारसौ सालके बाद एशिया भर में व्यापक हो पाया। इस रास्ते से आगे बढ़ते जायें तो हमें मान लेना होगा कि भ० महावीरजी के बहुत पहले जैनधर्मका प्रचार हो चुका था-और यही उस धर्म की अति प्राचीनता की प्रबलतम युक्ति है।

जैनधर्मकी प्राचीनता के बारे में ऐसा भी कहा जाता है कि दक्षिण भारतमें श्रुतकेवली भद्रबाहु अपने शिष्य चद्रगुप्त मौर्य को और अनेक जैन साधुओं को साथमें लेकर सबसे पहले ईस्वी पू० २९८ में पहुँचे थे।[12] लेकिन अन्य एक प्रमाणके अनुसार प्रगट है कि जैनधर्म महावीरकी जीवद्दशा में ही दक्षिण भारत में फैला था? भ० महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। उस समयमें जैनधर्म कलिंग, महाराष्ट्र, आंध्र और सिंहल में व्याप्त हुआ था। हाथी गुफा शिलालेख से मालूम पड़ता है कि महावीर कलिंग आये थे और उन्होंने कुमारी पर्वतमें जैनधर्मका प्रचार किया था। अधिकतु ईस्वी०पू०पहली सदी में जैनधर्म कलिंगका राष्ट्रधर्म हो गया था। महाराष्ट्रमें भी भ०महावीरसे पहले जैन धर्मका प्रचार हुआ, क्योंकि भ० पार्श्वनाथ के शिष्य करकंडु कलिंगके राजा थे। उन्होंने तेरपुर (धाराशिव) गुंफाका परिदर्शन किया था और वहां जैन मंदिरों का निर्माण कराया था।[13] उन मंदिरों में जिनेन्द्रों की मूर्तियां स्थापित हुई थी।

इसके साथही यह भी कहा जाता है कि आंध्र में मौर्यों के राजत्व से पहले जैनधर्म प्रचारित हुआ था। उसी तरह, 'महा-

---

12 Cambridge Histry of India Vol I Page 164-65 और Epigraphia Carnatica vol. I. और Early History India. Page 154.

13 I. B O R S Vol XVI Parts I-II and Karakanducharya's (Karanja Series) Introduction.

वंश' से मालूम होता है कि ईश्वी०पू० १५वी सदी में जैनधर्म सिहलमें प्रचारित हुआ था। इस तरह पूर्व उत्तर और दक्षिणमे चेर और तामिलनाड आदि में श्रुतकेवली भद्रबाहुसे बहुत पहले जैनधर्म पहुँचा था। रामस्वामी आयागार महोदय ने भी[14] प्रश्न उठाया है कि उत्तर भारत का एक धर्म दक्षिण भारतको विना स्पर्श किये हुए सिंहल पहुँच सका, यह कैसे सभव हुआ ?

केवल यह तभी सभव हो सकता है जबकि यह सभव हो कि उत्तरसे बौद्धधर्म समुद्रके मार्गसे दक्षिणको गया था। इसके अतिरिक्त यह भी सोचना चाहिये कि एक जैन आचार्य अपने विशाल जैन सघके अनेक साधुओ को अपने अधीन दक्षिण मे ले गये तो यह कैसे सभव है कि भद्रबाहु के पहले वहाँ जैनधर्म का कोई प्रभाव नहीं, इसपर भला कैसे विश्वास किया जाय ? जैन पुस्तको मे लिखा है कि सबसे पहले ऋषभ ने जैनधर्म को दक्षिण भारतमे प्रचारित किया था उनके पुत्र बाहुबली दक्षिण भारतके प्रथम राजा थे। वे ससार को त्याग कर नग्न जैन साधु बने थे। गोदावरी के किनारे पर अवस्थित पोदनापुरमें उन्होने कठिन तपस्या की थी और सर्वदर्श बने थे। तब बाहुबली जी ने दक्षिण भारतमें जैनधर्मका प्रचार किया था। इससे मालूम पडता है कि जैनधर्म दक्षिण भारतमे अति प्राचीनकाल से प्रविष्ट हुआ था। इसके अतिरिक्त साहित्य और स्तभ आदि प्रमाणो से जैनधर्मका यह ऐतिहासिकत्व प्रमाणित हो रहा है।

जैन साहित्यमे भद्रबाहुके बहुत पहले दक्षिण मथुरा, पोदनपुर, पलाशपुर उद्दिल, (मलयगिरि के पास) महाशोक नगर आदि स्थानो की कथा कही गयी है दक्षिण मथुरा पाडव भाइयो द्वारा स्थापित हुई थी। उस समय वे वनवास में थे। दक्षिण

14 Studies in South India Jainism Part I P.33.

भारतमें पाण्डवोंके अज्ञातवास के समय द्वारका नष्टभ्रष्ट हो चुका था।[१५] इसके कारण श्रीकृष्ण अपने भाई बलदेव के साथ द्वारका छोड़कर दक्षिण आ रहे थे। रास्ते में जरतकुमार के निमित्तसे कौशाम्बी के वन में श्रीकृष्ण अप्रकट हुए।

पांडव भाइयों ने जब यह दुःख वार्ता सुनी तो वे बलराम की सान्त्वनाके लिये दौड़े और नारायणके शवको शृंगि पर्वतमें दग्ध किया। इस शृंगि पर्वतमें बलराम ने तपस्या शुरू की। दक्षिणको जाने पर पाण्डवोंने सुना कि पल्लव देशमें भ० अरिष्ट नेमि विहार कर रहे हैं, तब वे उनके पास गये और जैनमुनि के शिष्य बने।[१६] उनके साथ एक द्राविड़ राजा भी जैन बने थे जिन्होंने शत्रुंजय पर्वतसे सभी का उद्धार किया था।

जैन साहित्य के अतिरिक्त हिन्दू पुराणों में भी जैनमत मिलता है। देव और असुरों के युद्ध में विष्णु ने दिगम्बर जैन मुनिका अवतार लेकर असुरों की गोष्ठीमें अहिंसा और लोहाई की वार्ता का प्रचार किया था।[१७] उस समय वे नर्मदा के किनारेवाले प्रदेशमें वास करते थे। इससे मालूम पड़ता है कि बहुत पहले नर्मदा नदीके किनारेवाले प्रदेशमें जैनधर्मकी केन्द्रिक प्रतिष्ठा हो चुकी थी। आज भी जैन लोग वहां पूजा करते हैं।

सम्राट नेबुचदनेजार के ताम्र शासन से मालूम पड़ता है कि (ईस्वी पू० ११४०) (काठियावाड़में इसका प्रमाण भी है) यह सम्राट रेवा नगर के अधिपति थे और द्वारका आये थे।

---

१५ जैन हरिवंश Page 187

१६ जैनहरिवंश सर्ग ६१-६५, दक्षिण जैन इतिहास Vol III. Page 78-80

१७ विष्णु पुराण, अध्याय XVIII
पद्म पुराण, अध्याय. I.
मत्स्य पुराण अध्याय. XXIV.

वहा नेमि के नाम से रेवतक पर्वत में उन्होने एक मदिरका निर्माण किया था।[18] यह नेमि ही तीर्थङ्कर ग्ररिष्ट नेमि है। नेवुचादनेजार उनकी भक्ति करते थे। उनका राज्य वाद में रेवानगर के नामसे प्रसिद्ध हुग्रा था। सिद्धवरकूट के नामसे एक जैन तीर्थ रेवा नदी के ऊपर ग्रवस्थित है। इसमे मालूम होता है कि जैनधर्मने दक्षिण भारत में खूव प्राचीन कालमे स्थान जमा लिया था।

तामिल साहित्य में भी इसका प्रमाण मिलता है। तामिल व्याकरण "ग्रगत्तियमु" ग्रौर "तोल्कापियमु" से मालूम पडता है कि जैनधर्म दक्षिण भारतमें प्रचलित था। "तोल्कापियमु" एक जैन साधुके द्वारा ईस्वी पू० ४ थी सदी में लिखा गया था ऐसा लोग ग्रनुमान लगाते हैं। "मणिमेखलै" ग्रौर "शिलिप्पदीकारमु" भी हमें ग्रनेक उपादान देते हैं।

ग्रधिकतु मथुरा ग्रौर रामनगर जिलामें ईस्वी पू० ३री सदी का जो व्राह्मी लेख मिलता है उससे मालूम पडता है कि इन प्रान्तोमे जैनधर्म ग्रत्यन्त प्रवल था। नही तो उस समयकी जिन मूर्त्तिया इतने ग्रधिक परिमाणसे नही दिखाई देती। ग्रतएव जैन धर्म दक्षिण-भारतमें मौर्यकालसे बहुत पहले प्रचारित हुग्रा था। हिंदूशास्त्रो ने वुद्ध को एक ग्रवतार माना है।[19]

बौद्ध मतके ग्रनुसार ऐसे ग्रनेक वुद्ध विभिन्न युगोमें जगत्को शिक्षा देने के लिये ग्राये हे। यह है हिन्दुग्रो की ग्रवतार कल्पना का ग्रनुरूप। बौद्धो की तरह जैनलोग भी २४ तीर्थंकरो में विश्वास रखते हैं। हिन्दू पुराणो ने जिस तरह बुद्धदेव को ग्रवतार माना है उसी तरह ऋषभदेवको भी विष्णु का ग्रवतार

18 Times of India, 19 th March, 1935 Page 9 ग्रौर सक्षिप्त जैन इतिहास III. पृ०६५-६६

१६ बुद्ध वध

माना है। ये महाफल संभूत और चक्रवर्ती राजा थे। अन्त में अपने पुत्रों को राज्य भार अर्पण करके उन्होंने यतिव्रतका अव-लम्बन किया था।[20]

इस दृष्टिसे विचार करने पर जैन और बौद्धधर्म स्थानविशेष तथा क्षेत्र विशेषमें वेदविधियोंका खण्डन करने पर भी दोनों वैदिक धर्मके संस्कार परम्पराके पृष्ठभूमिसे प्रभावित हुए माने जासकते हैं। प्रत्यक्ष रूपमें प्रासंगिक न होने पर भी इस ऐतिहासिक अनुच्छेद को यहां सूचित करनेका प्रधान कारण है जैनधर्मकी मूल प्रकृति और ऐतिहासिक कालका निरूपण। उसके बाद धर्मकी आलोचना अतिप्रयोजन हो जायेगी। इतिहास की पृष्ठभूमिमें सम्राट चन्द्रगुप्त के राजत्व में कलिंग की राजशक्ति हमें स्पष्ट दिखाई देती है। हम समझते हैं कि कलिंगके राजा उस समयसे जैनधर्मावलम्बी थे। चन्द्रगुप्तका कलिंगका आक्रमण बिना किये ही दाक्षिणात्य भूभागमें प्रविष्ट हो जानेका कारण यह समधर्मत्व ही है।

कलिंगवासी प्रारम्भसे ही स्वाधीनवृत्ति के पोषक और बलवान थे। इतने शक्तिशाली और स्वाधीन होने के कारण ही कलिंगकी सेना स्वाधीनता और स्वदेशिकताके लिये प्राण देकर अशोकके साथ लड़ी थी।[21] यद्यपि इन युद्धोंमें कलिंग देशकी स्वाधीनता चली गई और अशोकने 'देवानां प्रिय' बनकर विश्वजनीन मैत्रीका प्रचार किया था। उससे उद्भासित होने पर भी कलिंग के लोग अपनी धर्मशीलता को भूल नहीं सके थे। खारवेलके दिग्विजयमें उसका प्रमाण मिलता है। खारवेल

---

२० भागवत १ स्कन्ध, अध्याय ६
१ स्कन्ध अध्याय ३
५ स्कन्ध अध्याय ४
७ स्कन्ध अध्याय ११

21- R.E VIII Corpus Inscriptionum Indicarum Vol I by Hultsch.

उत्तर भारतको जीतकर जिनमूर्तिको पाटलीपुत्र से कलिंग ले आये थे। [२२] खारवेलके युगसे ही हमारे आलोच्य विषय का ठीक आरम्भ हुआ है ऐसा मान लेना उचित होगा। यह है ई०पू० १वी सदी की बात। अशोकके बाद कलिंग फिर स्वाधीन बनकर खारवेल के समय समग्र भारतमे एक शक्तिशाली साम्राज्यमे परिणत हुआ था। खारवेल जैनधर्मकी महिमा का प्रचार करने मे लग गये थे।

जैनधर्मका यह नव पर्याय उड़ीसा मे लगभग ईस्वी ५ वी सदी तक रहा था जबकि जैन और बौद्ध तान्त्रिकवाद का प्रवर्त्तन हो चुका था। यह प्रभाव लगभग ईस्वी १० वीं सदी के अन्त तक अव्यहत रहा। मगर अन्तमें वैष्णव धर्म के स्रोत से लुप्त हो गया।

---

22 Select Inscriptions-D. C Sarkar.

३. कलिंग में आदि जैनधर्म

जैनधर्ममें जो २४ तीर्थंकरों की उपासना की विधि है उन में से कितने ऐतिहासिक महापुरुष और कितने काल्पनिक महापुरुष थे उनकी युक्ति युक्त समीक्षा अभी तक नहीं हो सकी। धर्म के स्रोत में उलझाने से वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार उन की उपयुक्त मीमांसा हो नहीं सकती। ऐतिहासिक जैकोबी और अन्य पण्डितों ने जैन शास्त्रों की आलोचना से सिद्धान्त निर्धारित किया है कि पार्श्वनाथ से जैनधर्मका प्रारंभ हुआ। ऐतिहासिक भित्ति के आधार पर पार्श्वनाथ ही जैनधर्मके प्रथम प्रवर्त्तक के रूपमें माने जाने चाहिये ; परन्तु साथ ही जैकोबीने यह भी माना कि जैनोंकी २४ तीर्थंकरों की मान्यता में सत्य होना चाहिये-प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की ऐतिहासिकता भी तथ्यपूर्ण हो सकती है।

भ० पार्श्वनाथ को जैनधर्मका प्रवर्त्तक मानने में किंवदन्ती और इतिहास दोनों सहायक होते हैं।[2]

भ० पार्श्वनाथ जैनधर्मके आदि प्रवर्त्तक हों या न हों, इसमें सन्देह नहीं है कि उन्होंने सबसे पहले कलिंगमें जैनधर्मका प्रचार किया था। भ० पार्श्वनाथ के जाने के साथ कलिंगको

---

1 I. A. II Page 261 and Vol X Page 172 एवं स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जि Silver Jubilee vol. III Page 71 82 देखिये।

2 O. H. R. J. Vol. 11. Page 79

प्राचीन संस्कृति का घनिष्ठ संपर्क रहा है । उदयगिरि और खडगिरि की गुफाओमे भ० महावीर की मूर्त्ति और कथावस्तु ने अन्य तीर्थंकरो से अधिक विशिष्ट स्थानका अधिकार किया है। किंतु खडगिरिमे ठौरठौर पर भ० पार्श्वनाथको ही मूल नायक के रूपमें सम्मान प्रदान किया गया है। निस्सदेह कलिग के साथ भ०पार्श्वनाथका जो सपर्क है उसका दिग्दर्शन पूर्व अध्याय में सूचित हुआ है। प्राच्य-विद्या-महार्णव श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने "जैन भगवती सूत्र" "जैन क्षेत्र समास' और भावदेव के द्वारा लिखी गयी "२४ तीर्थंकरो की जीवनी" की आलोचनासे सबसे पहले कहा है कि भ० पार्श्वनाथने अग वग और कलिग में जैनधर्मका प्रचार किया था। धर्म प्रचारके लिये उन्होने ताम्रलिप्त बन्दरगाह से कलिगके अभिमुखमें आते समय कोपकटक मे धन्य नामक एक गृहस्थका आतिथ्य ग्रहण किया था। वसु महोदय के मतके अनुसार यह कोपकटक बलेश्वर जिलाका कुपारी ग्राम है। भीम ताम्रफलक से मालूम होता है कि ८वी सदीमे यह कुपारीग्राम कोपारक ग्रामके रूपमे परिचित था।[3]

('भ० पार्श्वनाथ गृहस्थ धन्यके घरमें अतिथि हुए थे' इस घटनाको स्मरणीय करनेके लिये कोपकटक को उपरान्त धन्यकटक कहा जाने लगा था। वसु महोदयने इस विषयमें अधिक प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उस समय मयूरभज मे कुसुम्ब नामक एक क्षत्रिय जातिका राजत्व था और वह राजवश भ० पार्श्वनाथ के प्रचारित धर्मसे अनुप्राणित हुआ था) यह विषय वसु महोदय को कहा से मिला हमे मालूम नही है।

भ० पार्श्वनाथ के बाद भ० महावीर जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर के रूप में आविर्भूत हुए थे। जैनियो के "आवश्यक सूत्र" में लिखा हुआ है कि भ० महावीर ने तोषल में अपने

---

3 Neil Pur Copper Plate

धर्मका प्रचार किया था और वे तोसल से मोसल गये थे।

"तओ भगवं तोसलिं गओ .. . तत्थ सुमागहो नाम रट्ठिओ पियमित्तो भगवओ सो मोएइ तओ भगवं मोसलिं गओ" (आवश्यक सूत्र पृ० २१९-२०)

हरिभद्र ने आवश्यक सूत्रकी वृत्ति या टीका लिखी, जो हरिभद्रीया वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है। उस टीका में हरि भद्र ने स्पष्ट लिखा है कि महावीर स्वामी के पिता सिद्धार्थ नरेन्द्र के महावीर भगवान के बन्धु थे और कलिंग के राजा ने धर्म प्रचार के लिये भ० महावीर को आमन्त्रित किया था।[१]

श्री जायसवाल का कहना है कि सम्राट खारवेल के हाथी गुफा शिलालेख की १४ वीं पंक्ति में महावीर स्वामीके कलिंग आने की ओर कुमार पर्वत से अपने धर्म का प्रचार करने की सूचना दी गयी है।[३]

श्वेताम्बर "उत्तराध्ययन सूत्र"[४] से प्रकट है कि भ० महावीर के समय में कलिंग एक जैनभूमि था। कलिंगका पिहुंड नामक एक प्रसिद्ध बन्दरगाह उस समय जैनधर्मका प्रधान तीर्थक्षेत्र था। दूर देशों के वणिक् लोग वाणिज्य के लिये और कोई कोई धर्म के लिये भी इस बन्दरगाह को आते थे। जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र' में लिखा हुआ है कि चंपा राज्य से एक जैन वणिक पिहुंड बन्दरगाह को जाकर उधर कुछ काल तक रहा था और कलिंग की एक सुन्दर नारी के साथ विवाह किया था। डा० [illegible] ने लिखा है कि यह 'पिहुंड' बन्दरगाह

1 Haribhadriya Vritti (Agamodaya Samiti 218-220 Also vide J. B. O. R. S. VIII, P 223

3 J. B. O. R S VIII. ४६ पृष्ठ

४ उत्तराध्ययन सूत्र पृष्ठ ०२१

खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख का 'पिथुन्ड' है ।[7]

खारवेल के हाथीगुफा शिलालेखमें यह भी लिखा गया है कि खारवेल से बहुत पहले कलिगके राजाओंके द्वारा अध्युषित पिथुण्ड नामक एक जैनक्षेत्र था ।

इस आलोचनासे स्पष्ट सूचित होता है कि भ० पार्श्वनाथ के समय कलिगमें जैनधर्मका प्रभाव पड़ा था और भ० महावीर के समय अर्थात् ई०पू० ६ वी सदीमें इस धर्मके द्वारा कलिग विशेष रूपसे अनुप्राणित हुआ था । ई०पू० ४ थी सदी में महापद्म नन्द ने कलिग पर आक्रमण किया था । वह कलिंग विजय के प्रतीक रूप बहुकाल से जातीय देवता के रूपमें पूजित होने वाली कलिंग जिन प्रतिमा को अपनी राजधानी राजगृह को ले आये थे । यह विषय न केवल पुराणों में दिखाई देता बल्कि खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख में भी उसका स्पष्ट उल्लेख है । इस लिये ईस्वी पू० ४ थी सदीमें भी कलिगमें जैन धर्म राष्ट्रीय धर्म के रूपमें प्रतिष्ठित था ऐसा निःसंदेह कहा जा सकता है ।)

(ईस्वी पू० ३री सदी में कलिग के ऊपर एक अकथनीय विपत् आयी । मगध के सम्राट अशोक ने कलिग के खिलाफ युद्ध की घोषणा की और कलिग को छार खार कर डाला ।

इस युद्धमें कलिग के एक लाख आदमी मारे गये, डेढ़ लाख बन्दी हुए और बहुत लोग युद्धोत्तर दुर्विपाक में प्राणो से हाथ धो बैठे । मेरा दृढ़ विश्वास है कि कलिग के जिस राजा ने अशोकके साथ युद्ध चलाया था वह एक जैन राजा था । अशोक ने अपने १३वी अनुशासनमें गभीर अनुशोचना के साथ स्वीकार किया है कि कलिग युद्ध में ब्राह्मण तथा श्रमण उभय सम्प्रदाय के लोगो ने दुःख भोगा था । अशोक ने जिनको श्रमण कहा है

7- I. A. 1956 Page 145

है कि नन्दराज जैन थे कलिंगके आक्रमणमें अशोक भले विजयी हुए हो पर रोके थे नहीं, मगर नन्दराजाके द्वारा अपहृत कलिंग जिन प्रतिमाको उन्होंने भी नहीं लौटाया था।

उसके बाद जब खारवेल कलिंगके सिंहासन पर बैठे तब उन्होंने अपने राज्यकी १२ वें वर्षमें मगधके ऊपर आक्रमण किया और उस कलिंग जिन प्रतिमा को कलिंग लौटा लाये।

अशोकके बाद उसके नाती मगधके राजा हुए थे। अशोक जैसे बौद्धधर्मका पृष्ठपोषक था, ठीक उसी तरह संप्रति जैनधर्मका पृष्ठपोषक रहा। उसके राज्यकालमें कलिंग में जैनधर्मका अभ्युत्थान होना सहज था। कलिंगमें मौर्यवंशके बाद महामेघवाहन चेदिवंशका अभ्युदय हुआ। इस वंशके राज्यकाल में कलिंगमें जैनधर्म पुनर्वार राष्ट्र-धर्मके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ।

खारवेल इस वंशके तीसरे राजा थे। उनके धर्मविश्वास और जैनधर्मके प्रति उनके आदरमें अनेकों गवेषणाओंमें विस्तृत आलोचना की गई है। कलिंगमें "प्राचीन जैनधर्म" की रचना करते हुए भ० पार्श्वनाथ के समयसे लेकर खारवेल तक धारावाहिक रूपसे एक संक्षिप्त आलोचना की गयी है।

इस आलोचना के प्रसंगमें अशोकके समसामयिक कलिंगके चेदि राजा की कथा और उनके राजा खारवेल की कृपा की दी गयी है। कलिंग में जैनधर्मकी आलोचनाका अधिकार करनेमें गौरवमय है यह, पूर्ववर्ती कलिंग के एक राजाका विवरण उपस्थित करना प्रासंगिक और विषय संगत है। ये कलिंगके राजा करकण्डु भ० महावीर से पहले और भ० पार्श्वनाथ के बाद के कलिंग के राजा थे, यह सुविदित है। श्री ... इनको पार्श्वनाथके शिष्य मानते हैं।*

* — Indian Colure Vol IV 319 ff.

जैनग्रन्थ "उत्तराध्ययन सूत्र" १८ वा अध्यायमें करकण्डु के बारे में जो लिखा है, उससे मालूम पड़ता है कि जब द्विमुख पञ्चाल के, नमि विदेह के और नग्नजित् गान्धार के शासक थे तब करकण्डु कलिंग के राजा थे। इन चार राजाओं को उत्तराध्ययन सूत्रों के लेखक ने पुरुष पुंगव की आख्या दी है।[९]

इन राजाओ ने अपने अपने पुत्रो के हाथो राज्यभार का समर्पित करके श्रमणोंके रूपमें जिनपन्थका अवलम्बन किया था। बौद्धोंने राजा करकण्डु को एक प्रत्येक बुद्ध कहा है और बुद्धसे पहले जिन महापुरुषोंका जन्म हुआ था उनमें से करकण्डु का विशिष्ट स्थान दिया है।[१०]

"कुम्भकार जातक" से मालूम पड़ता है कि दन्तपुर करकण्डु की राजधानी थी। राजाने अपने अनुचरो के साथ दन्तपुर की एक आम्रवाटिकामें प्रवेश कर एक फलपूर्ण वृक्षसे पका हुआ आम लेकर भक्षण किया। यह देख सब ही ने आम तोड़ के खाये जिससे वह पेड़ ध्वस्त विध्वस्त हो गया।

राजा करकण्डु बड़े भावुक थे। बलवान् वृक्षकी दुर्दशा को देख वे गम्भीर चिन्तामें मग्न हुये और अन्तमें उन्होंने निश्चित किया कि संसार की धनसम्पत्ति दुःखोंका कारण है। इस भावना से वे संसार त्यागी बने और उनको प्रत्येक बुद्धकी ख्याति मिली।

करकण्डु के बारेमें यह है एक बौद्ध उपाख्यान। जैनियो ने "करकण्डु चरित्र" नामक एक पुस्तक का प्रणयन किया है। "अभिधान राजेन्द्र"में भी करकण्डु के बारेमें विस्तृत वर्णना है, जैनग्रन्थसे उपलब्ध उपाख्यानकी विस्तृत वर्णना आगे दी गयी है।

करकण्डु उपाख्यान–पूर्व कालमें चंपक (चम्पा) नगरीमें दधिवाहन नामक एक राजा थे। चेटक महाराजा की कन्या

९– उत्तराध्ययन सूत्र, १८ वा अध्याय, श्लोक ४४-४६

10- Fousball's Jataka No 3 P 376.

हाथी पद्मावती को अपनी पीठ पर बैठाये हुए निविड अरण्य के अभ्यन्तरमें प्रविष्ट हो ले गया। दधिने अनागत तथा अनिश्चित विपत्तिसे रानीके उद्धारका अन्य उपाय न देख शोकाकुल हृदयसे अपने सैन्योंके साथ चपा नगरको प्रत्यावर्त्तन किया।

रानी को लेकर दौडते दौडते क्लान्त तथा ग्रीष्म पीडित होने के कारण स्नान और जलपान की आशा से हाथी ने एक पोखरी में प्रवेश किया। तब रानी उसकी पीठ से नीचे सरक आई और पोखरी में निर्विघ्न तैरने लगी। चारो ओर निविड अरण्य से भरी हुई पर्वतमाला को देखकर भयविह्वला पद्मावती ने अपने गर्भाभिलाष के लिये अनुताप किया। बहुत देर में निजको सान्त्वना देकर भगवान् को प्रणिपात कर जाते जाते एक तापस के साथ उनकी भेंट हुई। रानी ने उन को प्रणाम किया। रानीको अभयदान करके तपस्वीने पद्मावती के परिचयकी जिज्ञासा की। रानीने तपस्वीको निर्विकार समझकर सारा वृत्तान्त कहा। तपस्वीने चेटक राजा (पदमावतीकेपिता) के मित्रके रूपमें अपनेको अभिहित किया। तपस्वीने उपदेश देकर कहा "वत्से! समस्त ससार विपत्का स्थान और अनित्य है। अत ससार सभूत प्रत्येक पदार्थकी अनित्यता को पहचान कर नाना विषयो में आशा बढाना अनुचित है। अब तुम्हारे लिये आश्रम चलकर क्लान्ति दूर करना आवश्यक है।" पद्मावती आश्रमको गई और फलाहार कर सुस्थ होनेके बाद आश्रम के सीमान्तके पास तपस्वीने उनको विदा किया। मुनिके निर्देशानुसार दन्तपुरकी ओर जाते जाते एक जैन सन्यासिनी के साथ रानीकी भेंट हुई। तपस्विनीने पद्मावती को दन्तवक्र राजाके अन्त पुर में लेजाकर उनके परिचयकी जिज्ञासा की। रानाने सारा आत्मचरित कहा लेकिन गर्भधारण के वृत्तान्त का प्रकाश नही किया। रानीके शोकाकुल चित्तमें सान्त्वना देने

लोग उसको 'करकण्डु' के नाम से पुकारते थे। पुत्र के मुख अवलोकन करने को माता पद्मावती प्रत्यह चांडाल के घर जाती और अपने पुत्र बालकाण्डिक या करकण्डु को मिष्टान्नादि प्रदान करती।

छः वर्ष की उम्र में पिता के आदेश से करकण्डु श्मशान के कार्यों में नियुक्त हुआ। एक दिन जब वह श्मशान की रक्षा में नियुक्त था तब उसको एक साधु का दर्शन मिला। साधु ने उस श्मशान में होते हुये शुभलक्षणयुक्त एक बांस को दिखाकर कहा "भूमि से चार अंगुल के परिमाण से जो इस बांस को ले कर अपने पास रखेगा उसको अवश्य राज्य मिलेगा।"

करकण्डुने वह बांसका टुकड़ा अपने पास रक्खा, और नियतकालमें उसको कंचनपुर का राज्य प्राप्त हुआ। अन्तमें वह अपने पितृराज्य चम्पाके भी अधिकारी हुये थे। उन्होंने कलिंग एवं दक्षिण भारतमें जैनधर्मकी प्रभावना की थी। इस आख्यान से कलिंगमें जैनधर्मकी प्राचीनता का बोध होता है।

थे कि खारवेलके समयको ई० पू० दूसरी शतीके प्रथमार्द्ध का मानना समुचित नहीं है, डॉ० हेमचन्द्रराय जी चौधरी[10] डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार[11] डॉ० बरुआ[12] प्रो० नरेन्द्रनाथ घोष[13] आदिने ई०पू० पहली शतीके शेषार्द्धको ही खारवेलका प्रकृत समय माना है।

हाथी गुफाके शिलालेखोंसे हमें कुछ शासकोंके नाम प्राप्त होते हैं। उनका समय निर्णीत हो जाए तो कुछ हद तक यह समस्यासी हल हो जावेगी। अत यहीं पर कुछ समसामयिक राजाओंका काल निर्णय किया जाता है।

अपने राजत्वकाल के दूसरे ही वर्षमें खारवेल ने राजा सातकर्णका कोई भय न मानकर पश्चिम दिशाकी ओर सैन्यदल भेजा था। यह सातकर्ण अवश्य ही आन्ध्र सातवाहन वंशके राजा होंगे। नानाघाट शिलालेखसे हमें ज्ञान होता है कि वे नायनीकाके स्वामी थे।

डा० रायचौधरीके मतसे तथा अन्य पौराणिक वर्णनों द्वारा ज्ञात होता है कि शुग राजाओंने चन्द्रगुप्त मौर्यके सिंहासनारोहणके १३७ वर्षके बाद ११२ वर्ष तक राजत्व किया था और शुंगवंश के अन्तिम राजा देवभूतिकी हत्याकर उनके अमात्य वासुदेवने काण्वायन वंशकी स्थापना करके मगध पर अधिकार किया था। फिर ४५ वर्षके बाद काण्वायन वंशके अन्तिम राजा सुशर्मणको सिमूकने राजगद्दी से हटाया था। सिमूकसे आन्ध्र सातवाहन वंशका प्रारंभ हुआ। इन पौराणिक कथाओं के अध्ययनसे डा० रायचौधरी ने निर्धारित किया है

---

10 Ibid, 11 Age of Imperial Unity 215 ff
12 Old Brahmi Inscriptions 1917, 253 ff
13 Early History of India, 1948, 189-199
14 Indian Antiquary, Vol XLVII (1916) 403 ff

(८) दिव्यावदान नामक एक बौद्धग्रन्थके उपाख्यान से यह मालूम है कि वृहस्पति नामका कोई मौर्यशासक था जो कि अशोकके पौत्र सम्प्रतिके उत्तराधिकारियों में था।[21]

(५) डॉ० चौधरीजी का कहना है कि काण्ववंशके बाद शायद किसी मित्र वंशके राजाका (Neo Mitra Dynasty) नाम वृहस्पति मित्र था।[22]

शुंगवंशके प्रतिष्ठाता पुष्यमित्र शुंग को खारवेल का समसामयिक मानकर डा० जायसवालने खारवेलके सिंहासनारोहण का समय ई० पू० १८२ निश्चित किया है[23]पुष्यमित्र-शुंगको हाथी गुफा के वृहस्पति मित्र प्रमाणित करने की सत्यता पर यह पूर्णतया आधारित है।

डॉ० भोगेल[24] डॉ० जायसवाल[25] और रेपसन्[26] ने मत प्रकाश किया था कि मोरा और पाभोसा शिलालेखों में जिन दो वृहस्पति मित्रोंके नामोंका उल्लेख किया गया है वे एक तथा अभिन्न हैं। क्योंकि उन शिलालेखों के प्राप्त स्थानों पर शुंग वंशका अखण्ड राजत्व था।

परन्तु इसे डॉ० आसानने ग्रहण नहीं किया है। उन्होंने देखा कि मोरा शिलालेख पाभोसा शिलालेखों से अवश्य ही अत्यन्त प्राचीन हैं। अत दोनों वृहस्पति मित्रोंमें पार्थक्य रहना भी स्वाभाविक है।

---

21 J B O R S II 96, III 480 Dr B M. Barua O B 1 P 213 ff

22 P H A I Page 401

23 J B O R S III Page 236 245

24 J R A S 1912 P 120

25 Cambridge History of India Vol 1 P 524-26

26 J B O R S. III P 480 ff

अस्तित्व मात्र का प्रमाणात्मक नहीं है।

यवनराजदिमित -शिलालेखकी आठवीं पंक्तिमें "यवनराज दिमित-"का लिखा रहना पहले पहल डा० जायसवालने अनुमान किया था[29]। इस अनुमानको प्रो० बनर्जी[30] और स्टेनकोनो[31] ने ग्रहण किया था। पर बाद में इतिहासकारों में इसके बारेमें सन्देह की सृष्टि हुई और डा० टार्नने इसे पूर्ण काल्पनिक प्रमाणित कर दिया,[32]।

डा० बरुआ ने भी इसे सम्पूर्ण अस्वीकार किया है।[33] उन्होंने कहा है कि शिलालेखके जिस अंशको 'यवनराज' पढ़ा गया है उसका पाँचवा अक्षर 'ज' नहीं बल्कि 'त' है डा० दिनेश चन्द्र सरकार ने कहा है कि उस अंशमें स्पष्ट "यवनराज" लिखा हुआ है पर "दिमित" शब्द के लिए उनका सन्देह है।[34] अतः यवनराज दिमित अथवा तिमितके बारेमें आलोचना करना अनावश्यक है।

हाथीगुफा-शिलालेखकी चौथी पंक्तिमें "तिवस-सत" नामक एक शब्द पाया जाता है।

"पञ्चमें च दानि वसे नन्दराज-तिवस-सत ओघाटित
तन सुलिय वाटा पणाडिम् नगर पवेशयति"

इस तिवस सत शब्दको ऐतिहासिक आलोचकों ने तरह तरह की आलोचनाएँ की हैं। विभिन्न ढंगसे इस शब्दका अर्थ किया है। प० भगवानलाल इन्द्रजी ने 'सत' का अर्थ 'सम्रह'

---

29 J B. O- R S XIII pp 221 & 228
30 A S of India 1914-15
31 Acta Orientalia 1923 Page 27
32 Greeks in Bactria and India 457 ff
33. Old Brahmi Inscriptions Page 18
34 Select Inscriptions Vol I Page 208

तथा खारवेलके बीचका समय व्यवधान न मानकर नन्दवंशीय राजत्वकालका एक समय व्यवधान मानते हैं।

परन्तु अच्छी तरह विचार किया जाए तो अध्यापक बनर्जी की गणना नितान्त भ्रमपूर्ण मालूम पड़ती है। नन्द-सम्वत्सर के बारे में कोई ठोस प्रमाण बिना पाए डा०जायसवाल अथवा बनर्जी के मतों को ग्रहण करना समुचित नहीं जान पड़ता है।

अतएव 'तिवसमत' को ३०० के रूपमें ग्रहण करना अधिक प्रामाणिक है। पौराणिक किम्वदन्तियों से भी खारवेल समसामयिक राजा सातकर्णी का नन्दराजत्व के ३०० वर्ष के बाद ही राजत्व करने की बात ज्ञात होती है। (मौर्यों का १३७ वर्ष + शुंगों का ११२ + काण्वों का ४५=२९४ वर्ष)[40] इस प्रमाण से नन्दवंशके पतनके २९४ वर्ष बाद ही सातवाहन वंशका प्रारम्भ होना सूचित होता है। डा०रायचौधुरी इससे पूरे सहमत हैं[41] फिर अगर "तिवसमत" को १०३ वर्ष मान' जाए तो नन्दराजा के ९४ वर्ष के बाद ही खारवेलने सिंहासनारोहण किया था। यह स्वीकार करना पड़ेगा (१०३—५=९८) ऐसी गणना से फिर दूसरे ढंग के विचार की सृष्टि होगी। क्योंकि नन्दवंशके किसी भी वर्ष से तिवसमत को १०३ वर्ष मानकर परिगणना करने पर जो समय निकलेगा उसमें "कलिंग मगधके आधीन था" यही प्रमाणित होगा अशोकीय शिलालेखों से यह प्रमाणित होगा कि उस समय तोषालि और सोमपा पर मौर्यों का शासन चल रहा था और कलिंगमें किसी चक्रवर्त्तीका अभ्युदय नहीं हुआ था[42] अतः तिवसमत को ३०० मानना चाहिए।

---

40 Age of Imperial Unity–Chapter on the Satavahanas by Dr D Sircar

41 P H A I 229 ff

42 O H R J Vol III no 2 page 92

कहा गया है।[47] उन्ही के प्रमाणों से (१) नन्द वंशीय राजालोग कृपण थे पर नहर खुदाई में अर्थव्यय करना आरम्भ हुआ (२) चन्द्रगुप्त द्वारा प्रतिष्ठित उस मौर्यवंश उस समय तक स्थापित नहीं हो सका था। क्योंकि मौर्यों को "पूर्वनन्दसुत" नाम से पुराणकार ने कहा है। अतः हाथीगुम्फा में अशोक को ही नन्दराजा परिलक्षित किया गया है।

डॉ० पाणिग्राही जी की तीसरी युक्ति यह है कि अशोकने अपनी तेरहवीं शिलालिपि (R E XIII) में कहा है कि उन की विजयसे पहले कलिंग पर और किसीने विजय नहीं की थी अतः चूंकि पहले पहल अशोकने कलिंग पर विजय-प्राप्त की थी उन्हें नन्दराजा मान लेना चाहिए।

डा०पाणिग्राहीजी की पहली युक्ति अनुसार हम इतना ही कह सकते है कि जैन लेखकोंने नन्दवंशके अंतिम राजाको ही अत्याचारी तथा कृपण कहा है। पर 'सर्वक्षत्रान्तक' 'एकराट्' महापद्मनन्द को कहीं पर कृपण नहीं कहा गया है पहले की आलोचना के अनुसार अगर महापद्मनन्द ही उत्कल के विजेता हुए होंगे तो उन्हें नहरकी खुदाई के लिए कृपण कहना या उनपर व्ययसंकोचका दोषारोपण करना समीचीन न होगा, विशाखदत्तके मुद्राराक्षस नाटकमें यह प्रमाणित होता है कि नन्दराजागण दानी तथा धार्मिक थे। अतएव ऐतिहासिक सत्य बिना पाये इन धनशाली राजाओंको कृपण कहना युक्ति संगत नहीं है।

डॉ० पाणिग्राही जी की दूसरी उक्ति भी वैसी भ्रमात्मक है। क्योंकि चन्द्रगुप्त को मौर्य साम्राज्य का प्रतिष्ठाता और पिप्पलिवन का मौर्य वंशधर निःसंकोचसे स्वीकार किया जा सकता है। पुराणों में चन्द्रगुप्त जी को अक्षत्रिय और पूर्वनन्द

47 J R A S XIX No 1, 25 ff

सुत नामसे वर्णित करने के पीछे गूढ रहस्य हो सकता है। ब्राह्मण कौटिल्य के साहचार्य से चन्द्रगुप्तने मगध पर अधिकार किया था। मगध के राजा बनने के बाद ब्राह्मण धर्म के प्रति अनुरक्त रहकर उन्होने जैन धर्म ग्रहण किया था। इसलिए ब्राह्मणो का खिन्न होना स्वाभाविक है। श्री हरित् कृष्णदेवने Indian Historical Quarterly में मौर्यों को पूर्वनन्दसुत और शूद्र नामसे वर्णित करने के कारणोकी विशद आलोचना की है।[४८]

मौर्योंका नदवशसे कोई नाता न था। बौद्ध ग्रन्थोमें उल्लेख किया गया है कि ई० पू० ६ वी शतो से मौर्य लोग पिप्पलीवन में स्वाधीन भावसे बसे हुए थे। महापरिनिर्वाण सुत्तसे[४९] हमें ज्ञात होता है कि मौर्य लोग क्षत्रिय वशज थे और दिव्यावदान ने[५०, ५१] भी इस को स्वीकार किया है।

ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थो मे चन्द्रगुप्त तथा अशोकादिको मौर्य न कहनेका तात्पर्य यह नही है कि वे नदवश के राजा थे। बौद्ध ग्रन्थोमे स्पष्टत उन्ह मौर्य कहा है। अत डॉ० पाणिग्राही के मतको हम कदापि स्वीकार नही कर सकते। रुद्रदमन के गिर्नार शिलालेखोमें भी चन्द्रगुप्त और अशोकको मौर्य कहा गया है। इसलिए अशोकको नन्दराजा कहना नितान्त भित्तिहीन है।

अपने शिलालेखो में यह स्पष्टत लिखा है कि उन्होने अपने सिहासनारोहणके आठवे वर्षमें कलिग पर अधिकार किया

---

48 I. H Q 1932 Vol. VIII No 3 page 466 ff

४९ अथ पिपलिवनिया मोरिया कोत्रि नर कान मल्लान यूत पाहेसुं-भगवाय खरियो भमपि खरिया।

५० त्वं नापिनी अह राजा, छत्रिया मूर्द्धाभिषिक्त कथ मया सार्द्ध समागमो भविष्यति।

५१ देवि अहं क्षत्रिय, कथ पलाडु परिभक्ष्यामि।

था और उपके पहले कलिंगअविजित था (Previously unco nquered) [परन्तु नि सदेह भावसे यह स्वीकार किया गया है कि कलिंग नन्दराजा द्वारा पहले से अधिकृत था। अत प्रश्न उठ सकता है कि अशोकने कलिंग को अविजित क्यो कहा ? संभवत इसीलिए कि उनके पहले किसी मौर्यने उसपर अधिकार नही किया था। नन्दवशीय राजत्व खतम होते होते कलिंगने अपने आपको स्वतन्त्र कर दिया था। इस स्वाधीन कलिंग पर ई० पू० २६१ में अशोक ने चढाई की थी। पर कलिंग पर विजय प्राप्त करना सहज साध्य नही था। तेरहवे शिलालेख पर अशोकने कलिंगयुद्धका भयावह तथा मर्मान्तिक चित्रण किया है।[५२] अन्त अवश्य उन्होने स्वाधीनता प्रिय कलिंगके अधिवासियो को अपने देशमे मिलाकर शान्ति तथा तृप्ति पायी होगी। अविजित कलिंग पर विजय प्राप्त करनेकी उक्तिमें अशोकका साम्राज्यवादी अह विद्यमान है। इसका पूर्ण प्रमाण हम उनके द्वादश शिलालेख से प्राप्त होता है। नन्दराजा के द्वारा कलिंग को अधिकृत होने की बातसे अशोक पूर्ण भावसे परिचित रहते हुए भी कलिंगको 'अजेय' बताकर उन्होने अपनी ही अहमका पराक्रम तथा आत्मगौरव का ही परिचय दिया है]। अत डा० पाणिग्राही का इसे ज्यादा महत्त्व देना उचित नही हुआ है। 'तिवससत'को १०३ वर्ष प्रमाणित करनेके लिए अशोक को नन्दराजा के समयमें ग्रहण करना सही नही है।

डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार ने कहा है कि सभवत हाथी गुफाकी शिलालिपि प्राचीनता की दृष्टिसे नानाघाट शिलालिपि और अवश्य ही बेसनगर की शिलालिपि के बाद की है। इसमें कोई सदेह करनेकी बात नही है[५४] रमाप्रसादचन्दने भी ब्राह्मी

52 Corpus Inscriptionum Indicarum I
54 M A S I No 1

लिपिके क्रमिक विकासपर अनुसन्धानकर कहा है कि अगर अशोकको शिलालिपिको ब्राह्मी लिपिका पहला पर्याय मानाजाय तो वेसनगर लिपिको पचम अन्तिम और हाथीगुफा लिपिको षष्ट अन्तिमके रूपमें स्वीकार करना समुचित होगा। इसी समय नानाघाट और भरहुत स्तूपके पूर्वपार्श्वके तोरणपर क्रमश नामनिका और घनभूति की लिपि लिखी गयी थी। इन अक्षरोसे अशोक लिपिका साधारण सादृश्य दीख पडता है। अत हाथीगुफा की शिलालिपियोको ई० पू० पहली शताब्दीका मानना भ्रमात्मक नही है। डॉ० सरकारने स्पष्टत स्वीकार किया है कि नानाघाट शिलालिपि का शिलालेख ईसाके पूर्व प्रथम शतीके शेपार्द्ध का है।[५५]

फर्गुसन और वर्गेस[५६] ने नासिक गुफाओको ई०पू० प्रथम शताब्दीके शेषार्द्धका माना है। सर जॉन मार्शलने भी यह स्वीकार किया है कि [५७] आन्ध्र सात वाहन वशके दूसरे राजा कृष्ण के समय नासिकका एक क्षुद्र विहार चैत्यके रूपमें पुनर्गठित हुआ था। अगर यह मत सच है तो कृष्ण ने ई० पू० पहली शतीके अन्तिम भागमे राजत्व किया था। अत उनके उत्तराधिकारी सातकर्णी और सातकर्णी की रानी नामनिका के नानघाट के शिलालेख और परवर्त्ती कालके हैं। यह डॉ० चौधरी के मतसे पूरा खपं जाता हैं और डॉ०पाणिग्राहीका मत प्रचेष्टा मात्र रह जाती है। अतएव खारवेल कभी ई० पू० दूसरी नहीं वल्कि पहली शताब्दी के अन्तिम भागके ही रहे।

महापद्मनन्द वशके प्रतिष्ठाताके रूपमें 'ऐकराट्' 'सर्वक्षत्रा-

---

55 Select Inscriptions,

56 Cave Temples of India by Messrs Fergusson and Burgess,

57 C. H. India Vol. I 636 ff.

न्तक' उपाधिधारी उग्रसेनने अस्मक, वितिहोतु, कुरुपाचाल आदि राज्यपर अधिकार स्थापन करते समय कलिंग पर विजयप्राप्त की थी । उनकी सैन्यवाहिनी को रण दुदुंभि ने समस्त भारत वर्षमें आतक की सृष्टि की थी, नही तो सर्वक्षत्रांतक उपाधि उन्हें पुराणकारो से न मिली होती । इसलिए तो स्वीकार करना पडता है कि हाथीगुफा के नन्दराजा स्वय महापद्मनन्द हैं । महापद्मनन्द से "तिवसमत" को ३०० वर्ष मानकर गणना करने पर हम ई पू प्रथम शतीमें उपनीत होते हैं । अत यही खारवेल का प्रकृत समय है ।

५. खारवेल का शासन और साम्राज्य।

कलिङ्गाधिप खारवेलके जीवन वृतान्तका एकमात्र आधार उनका खुदाया हुआ हाथीगुफाका शिलालेख है। उसीके आधार से ज्ञात होता है कि खारवेल एक महान् तेजस्वी और प्रतापी राजा थे। बलवान होनेके साथ वह देखने में बहुत ही सुन्दर थे। शिलालेखमें उनके शासनकालकी घटनाओका वर्णन मिलता है। उससे पता चलता है कि खारवेल सोलह वर्ष की आयु मे युवराज पद में अभिषिक्त हुए। उस समय वे विद्या अध्ययन समाप्त कर चुके थे। सोलह वर्ष की उम्र में उनके शरीर की गठन इतनी सुन्दर लगती थी कि उससे भविष्यमें उनके वीर योद्धा होने का परिचय मिलता था। इससे पता चलता है कि वे आत्मसयमी और सच्चरित्र थे। चाणक्यके अर्थशास्त्रानुसार उस समय के राजाओ को आत्मसयमी एव सच्चरित्र होना चाहिये था।[1]

खारवेल २४ वर्षकी आयुमें कलिगके सिहासन पर सुशोभित हुआ। और सिर्फ तेरह वर्ष ही राजत्व किया[2]। इस अल्प समय में कलिगके उत्तर और दक्षिण में जितने राज्य थे सभीको उसने

---

१ विद्या विनीत राजा ही प्रजात् दिनयेरत अनन्याग प्रथविग भूमते स्र्वोभूतहितेरत K A

2 History of Orissa Dr. H K. Mahatab and Eaely History of India, N N Ghosh.

जीत लिया था।[3] अशोकके भयावह आक्रमणसे समस्त कलिग प्राय. नष्ट भ्रष्ट सा हो चुका था। फिर भी कलिग वासियोके हृदयसे स्वतत्रताकी स्वाभिमानी आत्मा क्षीण नही हुई थी। अशोक की मृत्युके पश्चात् उस अल्प समयमे कलिग वासियोको निश्चय ही स्वतत्रता मिली। उस स्वाधीनता प्राप्तिके २०० वर्षके बीच मे ही कलिगमें फिर एक शक्तिशाली राज्य स्थापित हुआ, जो कि मगधसे बदला लेनाचाहता था। फलत मगधको हराकर इतने अल्प समय में खारवेल ने समस्त उत्तर और दक्षिण भारतमे अपनी विजय पताका फहरायी, यह आश्चर्यमय लगता है। खारवेल की सैन्य सख्या कितनी थी इस विषयमे जानकारी प्राप्त नही होसकी और वही उसी समयके शिलालेखोमे ही कुछवर्णन मिलता है।

हाथीगुफा शिलालेख के चतुर्थ लाइन से ज्ञात होता है कि खारवेल के राज्यकाल के द्वितीय वर्ष मे उसने सैन्यका प्रस्थान पश्चिमी दीप को किया था। इसी वर्ष से उनके साम्राज्य स्थापना की चेष्टा आरम्भ हुई। पश्चिमी दीप को प्रस्थान करने से पूर्व निश्चय ही खारवेल ने अपनी सेना को सुशक्त शाली बनाया होगा[1] और यही दुर्जय सेना लेकर खारवेल ने सातकर्णी के विरुद्ध में यात्रा शुरू की। यह सातकर्णी राजा आन्ध्र के सातवाहन वशका तृतीय राजा था।[2]

इस युद्ध का क्या कारण था, यह विस्मृतिके गर्भ में ही छुपा रहगया है। शायद ऐसा होसकता है कि खारवेल साम्राज्य स्थापित करने की अकांक्षामे सातकर्णी ने कुछ बाधाएँ डाली हो। और उससे रुष्ट होकर खारवेल ने उन पर आक्रमण

3 Glimpses of Kalinga History-M N Das P.-60

१ अपतीहत सक वाहन दलो

२ History of Orissa vol II Ed by Dr N K Sahu page 327

किया हो। और इस तरह पराजित होकर सातकिर्ण ने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया हो।

सातकर्णी राजा को हराने के पश्चात् खारवेल की सेना, कलिंग न लौटकर दक्षिणमें कृष्णानदीके तटपर बसे हुए अशिक नगर पर जा पहुंची ६/। पुराण के अनुसार ज्ञात होता है, कि, उस समय कृष्णा नदी तट के जो राजा थे, वे बडे ही पराक्रमी, और शूरवीर थे। फिर भी उनकी शक्ति खारवेल का मुकाबला करने से हार मान गई। अशिक राज्य पर आधिपत्य जमा खारवेल सैन्य सहित एक वर्ष तक वही रहा तब लौटा।

उसके बाद खारवेल तीसरे वर्ष कही भी नही गया। हाथीगुफा शिलालेख से ज्ञात होता है कि उस वर्ष उसने अपनी राजधानी में बहुत आनन्द उत्सव मनाये और कही नही गया। किन्तु चतुर्थ वर्ष के शुरू होती ही खारवेल ने अपनी सेना सहित विन्ध्याचल की ओर प्रस्थान किया। जिससे सारा विन्ध्याचल निनादित हो उठा। अरकडपुरमें जो विद्याधरोकी वास थे, उन पर अधिकार करके खारवेल ने रथिक और भोजक लोगो पर आक्रमण शूरू किया। और इन सभी को परास्त करके अपने आधीन कर लिया ७/। डॉ० जायसवाल ने हाथीगुफा लेखके आधारसे बताया है कि इसी वर्ष खारवेल ने 'विद्याधरो के आवास' (The Abode of Vidya dharas) का जीर्णोद्धार कराया था।

अपने राजत्वके पञ्चम वर्षमें खारवेलने अपनी राजधानी की शोभा एवं समृद्धि बढ़ानेके लिये ततसुलिय-वाट नहर को

६— जायसवाल और प्रोफेसर राखालदास बनर्जी ने इस अशिक नगरको भूलसे मुशिक नगर पढ़ा और उसीको वे लिखते रहे हैं।

७— रथिक (राष्ट्रिक) और भोजक-अशोक के शिलालेखों में उनका उल्लेख है।

बढ़ाकर लाये, जिसे नन्दराजा ने बनवाया था। राजत्व के छटवें वर्षमें वह अपनी प्रजा पर सदय हुये थे। इस वर्ष उन्होंने पौर और जानपद जनसघोको विशेष अधिकार प्रदान किये थे। इस से स्पष्ट है कि खारवेल यद्यपि एक सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारी सम्राट् थे, फिर भी उनकी प्रजाको राजकीय प्रबधमें समुचित अधिकार प्राप्त था। उसी वर्ष खारवेलने दुखीजनोंके दुखोका विमोचन करने के लिए उल्लेखनीय प्रयास किया था। अहिंसा धर्मका प्रकाश उनके जीवन में होना स्वाभाविक था

अपने राजत्वके सप्तम् वर्षमें खारवेल अपनी आयुके इकतीस वर्ष पूर्ण कर चुके थे। उनके शिलालेख मे ध्वनित होता है कि उसी वर्षमें उनका विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ था। उनकी महारानी ओडीसाके निकटवर्ती प्रदेश वज्रके राजवंश की राजकुमारी थी। आठवें वर्षमे उन्होने मगध पर आक्रमण किया और वह ससैन्य गोरथगिरि (बाराबर हिल्स) तक पहुच गये थे। जैन 'महापुराण' में भरत चक्रवर्ती के दिग्विजय प्रसग में भी गोरथगिरिका उल्लेख मिलता है। सम्राट् भरत भी वहा सेना लेकर पहुचे थे। उनके प्रभावसे जिस प्रकार मागधकुमार देव स्वत शरणमे आया, उसी तरह खारवेलका शौर्यभी अपना प्रभाव दिखा रहा था। गोरथगिरि विजय और राजगृहके घेरे की शौर्यवार्ता सुनते ही यवनराज देमित्रियस (Demetruis) के छक्के छूट गये। खारवेल को आया देखकर वह अपना लाव-लश्कर लेकर-मथुराछोडकर भाग गया। कितना महान् पराक्रम था खारवेलका। उनका देशप्रेम और भुजविक्रम निस्सदेह अद्वितीय था।

राजधानीको लौटकर खारवेलने अपने राजत्वकालके ६वें वर्षमे महान् उत्सव व दानपुण्य किया। उन्होने 'कल्पतरू' बनाकर सभीको किमिच्छिक दान दिया। घोडे, हाथी, रथ आदि भी योद्धाओको भेंट किये। ब्राह्मणो को भी दान दिया। और

प्राचीनदीके दोनो तटो पर 'विजयप्रसाद' बनवाकर अपनी दिग्विजय को चिरस्थायी बना दिया। दसवें वर्षमें उन्होने अपने सैन्यको पुन उत्तर भारतकी ओर भेजा था एव ग्यारहवें वर्षमे उन्होने मगध पर आक्रमण किया था जिससे मगधवासियो में आतङ्क छा गया था। यह आक्रमण एक तरह से अशोक के कलिग आक्रमणके प्रतिशोध रूपमें था। मगधनरेश वृहस्पतिमित्र खारवेलके पैरोमें नतमस्तक हुए थे। उन्होने अङ्ग और मगधकी मूल्यवान भेंट लेकर राजधानी को प्रयाण किया था। इस भेंटमें कलिगके राजचिन्ह और कलिग जिन (ऋषभदेव) की प्राचीन मूर्ति भी थी, जिसको नन्दराज मगध लेगया था। खारवेल ने उस अतिशय पूर्ण मूर्तिको कलिग वापस लाकर बडे उत्सव से विराजमान किया था। उस घटनाकी स्मृतिमें उन्होने विजय स्तंभ भी बनवाया था और खूब उत्सव मनाया था, जिससे उन्होने अपनी प्रजाके हृदयको मोह लिया था।

इसीवर्ष खारवेलके प्रतापको आन मानकर दक्षिणके पाण्डय-नरेशने उनका सत्कार किया और हाथी आदि की मूल्यमय भेंट उनकी सेवामें प्रेषित की थी। इसप्रकार अपने वारहवर्षके राजत्वकालमें वह अपने साम्राज्यका विस्तार कर लेते हैं और उत्तर एव दक्षिण भारतके वड़े बडे नरेशो को परास्त करके अपना आतङ्क चतुर्दिकमें व्याप्त कर देते हैं। निस्सदेह वह सार्थक रूपमें कलिगके चक्रवर्ती सम्राट् सिद्ध हो जाते हैं।

किन्तु अपने राजत्वकालके १३ वें वर्ष मे सम्राट खारवेल राजलिप्सामे विरक्त होकर धर्मसाधना की ओर झुकते हैं। कुमारी पर्वत पर जहा भ० महावीरने धर्मोपदेश दिया था, वह जिनमदिर बनवाते हैं और अर्हंत् निषधिका का उद्धार करते हैं। एक श्रावकके व्रतोका पालन करके शरीर और आत्माके भेदको लक्ष्य करके आत्मोन्नति करने में लग जाते हैं। उनको

धर्माराधना का विवरण आगेके अध्याय में लिखा है ।

हाथीगुफा शिलालेख में ठीक ही खारवेल को क्षेमराज, वर्द्धय-राज (राज्यवर्द्धन्), भिक्षुराज और धर्मराजके प्रशसनीय विरुदोमे अलकृत किया गया है। निस्सदेह उन्होंने प्रजाकी क्षेमकुशलका पूरा ध्यान रक्खा था। उन्होने ऐहिक राज्यका सवर्द्धन किया वहा ही आध्यात्मिक राज्यकी भी सवृद्धि की ! वह एक आदर्श और महान् सम्राट् थे ।

६. खारवेल और जैनधर्म

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि खारवेलके राजत्वकालसे सैकडो वर्षों पहले कलिंग दक्षिण भारतमें जैनधर्मका केन्द्रस्थल था। कलिंगमें ब्राह्मण्य धर्मके साथ२ समभावसे जैनधर्म प्रगति करता था रहा था। इस प्रगतिके परिणाम स्वरूप ही वहाँ उसकी प्राधान्य प्रतिष्ठा हुई थी। यही कारण है कि जैनधर्मावलम्बीयोके इष्टदेवको कलिंग "जिन" रूपमें सारे ही कलिंग राष्ट्रने माना था। इस मान्यतामें जराभी अतिशयोक्ति नहीं है। हाथीगुफा शिलालेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि ई० पू० चतुर्थ शताब्दीमें महापद्मनन्दने (नन्दराज) जब कलिंग पर आक्रमण किया और उसपर अधिकार जमा लिया, तब वह अपनी विजयके प्रतीकरूपमें 'कलिंग जिनको' पाटलिपुत्र ले गये थे। अपनी कलिंग विजयके उपलक्षमें महापद्म धन दौलत आदि कुछ भी न ले जाकर केवल जिनमूर्ति ले गये इसका आखिर क्या कारण हो सकता है ? सबके मनमें ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है। किंतु इसका कारण तो स्पष्ट है। शिलालेखीय साक्षीसे हमें ज्ञातहै कि यह जिनमूर्ति ही कलिंगके अधिवासियो की आराध्य देवता, इसलिए विजयी महापद्मका विजय गर्वसे उत्फुल्ल होकर कलिंग जिनकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। जैनधर्मका कलिंगमें प्राधान्य विस्तार होनेके कारण जिनमूर्तिका प्रभाव भी प्रत्येक कलिंग वासीके ऊपर कम या ज्यादा पडा ही होगा। अधिकन्तु महापद्म स्वय ही जैनधर्मके

उपासक थे। अन्यथा कलिंग अधिकृत करने के उपलक्षमें महापद्मने समग्र जातिके, देशके तथा स्वयं अपने इष्टदेवको सुदूर पाटलीपुत्र लेजाने का प्रयास नहीं किया होता। यदि वह जैन धर्मावलम्बी न होते तो वह जिनमूर्तिको नष्ट कर देते। परन्तु हाथीगुफा शिलालेखसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि खारवेलके मगधपर अधिकार करने के समय तक अर्थात् ३०० वर्षोंके दीर्घकालमें उपरोक्त मूर्ति पाटलीपुत्रमें सुरक्षित रही थी।

नन्दराजाके कलिंग पर अधिकार करनेके बाद भी जैनधर्म उत्कलसे अन्तर्हित नही हुआ था। और नही ही उत्कलीयोंके द्वारा अवहेलित हुआ था। बल्कि विभिन्न राजवंशोंकी पृष्ट-पोषकताके कारण भ० महावीर जिनेन्द्रकी शान्तिपूर्ण और मैत्रीमय वाणी कलिंगके कोने-कोनेमें प्रचारित हुई थी। यह एक तथ्य है कि अशोकके समयमें और उसके बादमें भी कलिंग जैनधर्मका प्रमुख केन्द्रस्थल था। 'चेति' राजवंशके साहचर्य और सहानभूतिमई संरक्षणसे इस धर्मके सम्प्रसारणमें विशेष साहाय्य मिला था। जब उत्कल के इतिहास में महामेघवाहन कलिंगाधिपति खारवेलका आविर्भाव हुआ तब जैनधर्मकी सिप्र अग्रगतिमें प्रतिरोध खडा करना सभव ही न था। खरवेल स्वयं जैनधर्मके उपासक और प्रधान पृष्ठपोषक थे। हाथीगुंफा शिलालिपिसे यह प्रमाणित होता है कि नन्दराज कलिंग विजयके बाद जिस कलिंग जिनको यहा से लेगये थे, खारवेल उसी मूर्तिको अपने राजत्वकालके द्वादशवें वर्षमें अग और मगध पर अधिकार करके कलिंगमे वापस लौटाकर लाये थे। इस सुअवसर पर शोभायात्रा निकालने की तैयारी की थी। खारवेलकी विराट सैन्यवाहिनी और कलिंगके असख्य नागरिकोने उस महोत्सवमें योगदान दिया था और कलिंग साम्राज्यके सम्राट् ही स्वय उसके समर्थक एव उत्सवको सुन्दर रूपसे सपन्न करने के लिये

यत्नवान हुये थे । संगीत और वाद्रित्रोके ध्वनि समरोहमें कलिंग जिनको पुन कलिंगमे स्थापित किया गया। हाथीगुफा शिला-लिपिसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि खारवेल और उसके परिवारके सभी लोग जैनधर्मावलम्बी थे। उनकी भक्ति और स्नेह कलिङ्ग जिनके साथ ओतप्रोत ही था।

किन्तु इस प्रसंगमें याद रखने की बात यह भी है कि जैन धर्म कलिंग मात्रका धर्म न था, बल्कि ई० पू० ६टी शताब्दि से ही भारतके प्रयेत्क प्रांतमें हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी मिलजुल कर रह रहे थे। उत्कलमें हिन्दू, लोगो की रीतिनीति का प्रभाव जैनधर्मके ऊपर पडा प्रतीत होता है किन्तु जैनधर्म की आध्यात्मिक श्रृंखला, कठोर नियमपालन और तीर्थंकरोकी महनीयता और चरित्र विशिष्टता आदि विशेष गुणोके द्वारा उत्कलीय प्रजाजन अनुप्राणित हुए ही थे।इसमें अचरज करने का कोई कारण नही है। यह हमारा व्यक्तिगत वैशिष्ट्य और देशगत आचार हैं। तीर्थंकरो के विराट व्यक्तित्व और त्यागके सामने कलिङ्गवासियों का स्वत प्रणत होना स्वाभाविक ही था। खारवेलके समयमें खडगिरि और उदयगिरिमें जैन साधुओं के लिये सैंकडो गुफायें निर्मित हुई थी। खारवेल स्वय जैन थे इस कारण जैन साधुओके प्रति उनकी व्यक्तिगत अनुरक्ति थी। हाथीगुफा शिलालेखके प्रारंभमे ही चक्रवर्ती सम्राट् खारवेलने जैनधर्मके नमस्कार मूलमंत्रको लक्ष्य करके अपनी भक्ति प्रदर्शितकी है। शिलालिपि की प्रथम पंक्ति में लिखा है कि—

'नमो अरहंतानं' 'नमो सवसिधानं'।[1]

1. "Let the head bend low in obeisance to arhats, the Exalted Ones.
Let the head bend low (also) in obeisance to all Siddhas, the perfect Saints"

जैन शास्त्रानुसार पाच नमस्कार मत्र उच्चारण करने की प्रथाका समयन पडित भगवानलाल इन्द्रजी और राजेन्द्रलाल मित्रजी भी करते हैं। जैन सम्राट खारवेलन शास्त्रानुमोदित पन्थके अनुसार प्रशस्तिके प्रारभम अर्हत् और सिद्ध परमेष्टिया के प्रति अपनी नम्र विनय प्रदर्शित की है ।[2]

खारवेलकी इस शिलालिपिमे उनके चिन्ह भी हैं। उसके दोनो पार्श्वोमे चार सकेत चिन्ह है। वाम पार्श्वमें दो और दाहिनी तरफ दो सकेत चिन्ह हैं। प्रथम सकेत चिन्ह शिलालिपि की २५वी पक्तिके बाई ओर है। चौथा सकेत चिन्ह सातवी पक्ति के दाहिने पार्श्वमे है। शिलालिपिका प्रारभ और समाप्ति निर्देश के लिये ये दोनो सकेत दिये गये हैं। द्वितीय सकेत चिन्ह प्रथम सकेत चिन्हके निम्न भागमे और तृतीय सकेत चिन्ह प्रथम और द्वितीय पक्तिके दक्षिण पार्श्वमे है। डा० जायसवाल का कहना था कि, तृतीय सकेत चिन्ह ठीक खारवेलके नामके वाद है, परन्तु यह ठीक नही।

किन्तु प्रश्न यह है कि आखिर ये सकेत चिन्ह हैं क्या ? जैनकला पद्धतिके मतानुसार इनमें प्रथम सकेत चिन्हको जैन लोग "वर्द्धमगल" कहते है।[3] द्वितीय सकेत चिन्ह 'स्वस्तिक' है। तृतीय सकेत चिन्हका नाम "नदिपद" है। कान्हेरि निकटस्थ 'पदण' पर्वतकी एक शिलालिपिमे उन सकेतको "नदिपद" कहा गया है।[4] हाथीगुफाका ४था चिन्ह 'रुखचेतिय' या वृक्षचैत्य'

---

२ नमो अरिहन्ताणम्, नमो सिद्धाणम्,
नमो आयरियाणम्, नमो उवझायाणम्
नमो लोए सव्व–साहुणम् ।

3 Dr A K Coomarswamy ने जिसे 'Powder-box' कहा है।

4 J B B R A S XV Page 320

के सामने अभिहित किया जाता है।

'वर्द्धमंगल' एक मांगलिक चिन्ह रूपमें जूनागढ़की जैनगुफा के द्वारदेशमें खोदा हुआ है। सांची स्तूपके तोरणमें भी यही चिन्ह पाया जाता है। पश्चिम भारतका बौद्ध गुफाओं की शिलालिपियोंमें भी 'वर्द्धमंगल' चिन्ह पाया जाता है।[5] जूनागढमें अष्टमंगल चिन्ह भी खोदे हुए मिलते हैं। इन्द्रजी कहते हैं कि स्वस्तिक, दर्पण, कलश, भद्रासन, मत्स्य, पुष्पमाल्य अंकुश और वर्द्धमंगल ये अष्टमंगल चिन्ह हैं। आजकल जैन भिक्षुओंका भिक्षापात्र ठीक वर्द्धमंगल चिन्ह सा है। हाथीगुफा में वर्द्धमंगलकी आवश्यकता क्या थी? यह कहना कठिन है। ऐतिहासिकगण इसे त्रिशूल, त्रिरत्न या वृषभ रूपमें भी बतलाते हैं। प्राचीन भारतकी मुद्राओंमें जो चिन्ह पाया जाता है वर्द्धमंगल उसमें अन्यतम है। हाथीगुफा शिलालेखके अन्य तीन चिन्ह भी प्राचीन मुद्राओंमें पाये जाते हैं।

हाथीगुफा शिलालिपिके आदि अन्तका निर्णय प्रथम और चतुर्थ चिन्होंसे होता है।

स्वस्तिक और नन्दिपदका इतिहास जो भी हो, परन्तु हाथीगुफा शिलालिपिमें उनका व्यवहार यथाक्रम स्वस्ति और मंगल के प्रतीक रूपमें हुआ है। 'मंगलसुत्त' नामक पालिग्रन्थमें उनका प्रमाण मिलता है। हरिदकृष्णदेव कहते हैं कि ब्राह्मणोंने ॐ शब्दके स्थानके लिये स्वस्तिक और नन्दिपदको प्रायोंने व्यवहार किया है। यही नियम बौद्ध और जैनों के यहाँ भी प्रचलित है। वेदोंमें ॐ मंगल सूचक है।

हाथीगुफाकी शिलालिपि जैन सम्राट खारवेल के निर्देशमें लिखी गयी, इसलिए शिलालिपिमें जैन शास्त्रके मांगलिक चिन्ह रहना सर्वथा स्वाभाविक है। सम्राट खारवेलको जैनधर्मावलम्बी

---

5 Acts du Sixiome Congris III 137

के रूपमें प्रमाणित करने के लिये इन चिन्होको प्रमाणके रूपमें ग्रहण किया जा सकता है।

शिलालेख की चौदहवी पक्ति में उल्लेख है कि—
"तेरसमे च वसे सुपवत-विजयचको कुमारी पर्वते अराहतो परिनिवासे ताहिकाय निसीदीयाय राजभतकेहि, राज-भातिह राजनीतिहि राजपुतेहि। राज महिषि खारबेल सिरिना सतदशलेणंसत कारापित।"[6]

जैनोकी सुविधाके लिये खारवेल और उनके परिवार सम्बन्धीजनोके प्रयाससे ११७ गुहा तैयार हुआ था।

यद्यपि खारवेल जैन थे, फिर भी उनकी सहानुभूति केवल जैनो तक ही सीमित न थी। उन्होने हिन्दू देवदेविओ के लिये भी एकाधिक मदिर निर्माण किया था, इसमे कोई सदेह नही।
"सुकता- समण सुविहितान, च सतदिसनु यतिव, तापस ईसिन लेण कारयंति, अरहत निसवीय समीपे पभारे वरकार समुथापिणहि अडेक जोजना हताह पेनति-साहि-सतसरसाचि सिलाहि थम्बनित् चेचियानि च कारापयति। पटलिक रतिरे च बेडुरिम गभे थम्भे पडियापयति।"

"पनतरीय सतस हरेहि देवुरिय नीलमोक्ष चे चयति-अष सतिक गेरिय उपदयति।'

(हाथीगुफा शिलापिकी पन्द्रह पक्ति)

इसे पढनेसे मालूम होता है कि अपने राजत्वकालके तेरहवी

---

6. And in the 13th year on the Kumari hill, in the well known realm of victory, 117 Caves were caused to be made by his Graceful Majesty Khāravela, by his relatives, by his brothers, by the royal servants, for the residing Arhats desiring to rest their bodies

वर्षमें खारवेलने जैन सन्यासियोके लिये कुमारीगिरि पर ११७ गुफायें तैयार कराई थी, और साथ साथ दूसरे प्रसिद्धधर्म के साधु और सन्यासियोंके लिये भी (सकल-समग-सुविहिता) एक दूसरी गुफा निर्माण किया था। फिर भी अन्यान्य मुनि ऋषि और श्रमणो के लिए सभी प्रबन्ध किया था। यह बात शिलालिपिमें अङ्कित है। (शत विसाकम् यदिकम् तापस इसिकम् लेयेन कारयति)। यहा यति, ऋषि और साधुओ का उल्लेख करने से हिन्दुओ के वर्णाश्रम धर्मगत वानप्रस्थ अवस्था की सूचना अनुमानित होती है*। अशोककी शिलालिपि आदि में ब्राह्मण धर्मके योगी ऋषिओ से पृथक प्रगट करने के लिए जैन, आजीवक और बौद्धोका श्रमण नामसे अभिहित किया गया है। लेकिन खारवेलने ब्राह्मण सन्यासियो को यती, ऋषि और तापस नामसे अभिहित किया है। बौद्ध और आजीवक लोगो को हाथीगुफा शिलालेखकी वर्णनामे स्थान नही दिया गया है। पर इसका कारण निर्णय करना असभव है।

शिलालेख की सोलहवीं पक्तिमें खारवेलकी धर्मनीति विश्लेपित हुई है। इस धर्मनीतिको विशद आलोचनाके लिए शिलालेखका प्रोक्त भाग पर विशेप ध्यान देना आवश्यक है।

"मेरा वास वधराज दास इवरावास धमरावास वसते सुनते अनुभवतो कलालाण गुणविसेस कुशलो सवपाषाड पूजोको सव-देवायतन-सकार-कारको अपतिहत चकवाहनबलो चकधरो गुत चको पवति चको राजिसि वसु कुल विनिसितो महाविजयो राजा खारवेल सिरि।"

(हाथीगुंफा शिलालेख— १६ वी पक्ति)

समालोचनाके लिए जिसका सस्कृत अनुवाद नीचे दियागया है

---

*— जैन श्रमणो मे भी यति, ऋषि और साधुओ का वर्गीकरण मिलता है। —स०

"क्षेमराज स. वर्द्धराज स इन्द्रराज. स धर्मराज पश्यन्त श्रण्वननुभवन कल्याणाणि गुणविशेष कुशल सर्व पाषड पूजक सर्व–देवायतन सस्कार-कारक अप्रतिहत चक्रवाह् वल चक्रधरा गुप्तचक्र प्रवर्तनचक्र राजर्षि वसुकुल विनर्गतो महाविजयो राजा खारवेल श्री ।"

[इस उद्धृत प्रकरण मे खारवेलकी चारित्रक महनीयताका परिचय भी दिया गया है । वह क्षमाशील, धर्म परिवर्द्धन के आधार और इन्द्रके समान न्यायविशारद थे। धार्मिक निष्ठाके केन्द्र खारवेल आध्यात्मिकता—विकासके लिये सदाहित और कल्याण साधनमे लिप्त थे । उन्हें "सर्व पाषड पूजक"के नामसे अभिहित किया गया है । यहा इस उल्लेखमें अशोकके धर्मानुशीलन वृतिकी छायासी मालूम होती है । अशोक की तरह खारवेल भी सबही धर्मोको समान दृष्टिसे देखते थे । केवल इतना ही नही वल्कि जैन होते हुए भी वह अन्य धर्मोके प्रति सम्मान प्रदर्शन करते थे । शिलालिपिका "सबव देवायतन सस्कार कारक' लेख इस मतको पुष्ट करता है। इसके साथ ही अपने राजत्वकाल में निस्सदेह खारवेल कलिगकी श्री वृद्धि के लिए भी खुले हाथसे धन व्यय करते थे । यह विषय शिलालिपिसे पाया जाता है । सिर्फ जैनोके लिए आत्मनियोग नही करते थे, वल्कि साम्राज्य की सभी प्रजाओके सुख साधन के लिए काम करते थे । सामाजिक आचार-विचारमें कोई कडी नीति नही थी]।

दुर्भाग्यसे समयकी प्रतिकूलताके कारण उस समयके मदिर अब नही है, नही तो खारवेलकी महानताके वारेमें वे गवाही देते और उनके धर्मभावको साक्षात् कर दिखाते ।

सचमुच खारवेल जैनधर्मके उज्वल आलोक स्तम्भ थे। उनकी पृष्ठपोषकतासे जैनधर्म अपनी स्थितिमे अटल था ।

इसलिए शिलालिपि में उनको "चकधरो" (चक्रधर) नामसे अभिहित किया गया है। बौद्ध और जैन शास्त्रमे चक्रको 'धर्म' अर्थमें व्यावहार किया गया है। परन्तु यहांपर सम्राट खारवेल को चक्रधर नामसे अभिहित करने का यह मतलब है कि जैन धर्ममें उनकी जगह बहुत ऊची थी। सिर्फ उतना ही नही उन को गुप्तचक्रकी पदवी भी दी गई है।

खारवेलको जैन प्रमाणित करनेके लिए हाथीगुफा शिलालिपि में और भी बहुत प्रमाण है। शिलालिपिसे यह भी मालूम होता है कि राजत्वके आठवें सालमें वह यवनराजको युद्धमें मुहतोड़ जवाब देनेके लिए मथुरा तक गये थे। मथुरामें उन्होने ब्राह्मण, जैन श्रमण, राजभृत्य और वहा के अधिवासियो को भोजमें आप्यापित किया था। मथुरासे लौटने के बाद कलिंगमें भी इसी तरह एक भोजका आयोजन हुआ था।

इस वर्णनामें बौद्ध और आजीवकों का नाम नही पाया जाता है। इससे यह मालूम होता है कि उस समय कलिंग के समान ही मथुरामें भी जैन और हिन्दू धर्मके प्राधान्यसे बौद्ध धर्मका अस्तित्व नही था। कदाचित होता भी तो उनकी प्रतिष्ठा वहा पर नही थी, वल्कि उसके पनपने के लिए वहा अनुकूल परिस्थिति ही नही थी। उत्तर भारतमें मथुरा ही जैन धर्मका केन्द्रस्थल था। इसलिये खारवेलको वहा पर यवनराज की उपस्थिति और आधिपत्य असह्य हुआ। अत स्वधर्मकी निपपत्ता के लिए उनको मथुरा तक जाना पड़ा। खारवेलके आक्रमणसे वहाके अधिवासी आतंकित नही थे। अपिच जैन-धर्मावलम्बीयों के आनन्द वर्द्धनके लिये खारवेलका वीरत्वपूर्ण काम सराहनीय था।

मथुरासे वापस आनेके समय खारवेलको खाली हाथ लौटना नहीं पडा था। गुल्म और लताकीर्ण कल्प-वृक्ष भी उनके द्वारा

कलिंगको लाये गये थे। जैन शास्त्रमें है कि केवल चक्रवर्त्ती सम्राट ही कल्पवृक्ष लगानेके योग्य है। जिसमे साफ मालूम पडता है कि जैन सम्राट खारवेल कल्पवृक्ष लानेके सर्वथा ही योग्य थे।* राजत्वका काफी समय खारवेलने युद्धयात्रा और राज्यजयमें ही बीताया। जैन धर्मके उपासक होते हुऐ भी खारवेलने कैसे हिंसात्मक मार्ग अपनाया? यह सोचनेकी बात है। जैन धर्मका मूलमन्त्र अहिंसा और जीवदया उनके राजनैतिक और साम्राज्यवादी जीवनमें किसी प्रकार प्रभाव डालने में समर्थ नही हुआ? इसका क्या कारण है? यही खारवेल के व्यक्तिगत जीवनमें एक प्रधान विशेषता है। भारतके जैन सम्राटोने अहिंसाको जैन धर्मका मूलमन्त्र स्वीकार करते हुए भी और उससे अपनेको अनुप्राणित करते हुए भी उन्होने अपने राजसवधी लोकधर्म की पालना भी ठीक-ठीक ही की। जैन राजत्व का यही आदर्श है।

जैन सम्राट महापद्म उग्रसेन और मौर्य साम्राज्यके प्रतिष्टाता चन्द्रगुप्त मौर्य आदि राजाओने जीवन भर सग्राम की आवेष्टनी में कालयापन किया है, जिससे मालूम पडता है कि उनकी अहिंसा राजनीतिमें बाधक नही थी। अपरन्तु जैन सम्राट गण अपनेको विजयी वीर प्रमाणित करनेको आकाक्षी थे। खारवेलका मार्ग भी वही था। यद्यपि आप सच्चे जैन रूपमे ही पैदा हुये थे। आपका जन्म जिस वशमें हुआ था; वह 'चेति' वंश भी जैन धर्मका परिपोषक था। अशोक की तरह खारवेलने जीवनके मध्यान्हमें एक धर्म छोड कर दूसरे धर्मको नहीं अपनाया। ई० पू० २६१ क कलिंग युद्धमें अशोक के व्यक्तिगत जीवनमें एक महान् परिवर्तन होनेके साथ साथ उनका राजनैतिक जीवन धर्माविभापन्न हो गया था। अशोक

*— कल्पवृक्ष से भाव किञ्छिक दान देने का होना चाहिये। —स०

की तरह खारवेलका जीवन धर्मचिंतामें व्यतीत नही हुआ था धर्मकी गभीर चिन्ता और तन्मयता उनके मनमें आस्थान नही जमा पाई।*

खारवेल नि सन्देह एक जैन थे। परतु उनके जीवनकी भावधारा की आलोचना करने से सचमुच सदेहका सम्मुखीन होना पडता है। वचपनसे उनकी जो विद्याशिक्षा हुई थी, उसमें आध्यात्मिकता की बू तक नहीं थी। अर्थनीतिका प्रभाव उनपर विशेष रूपमें पडा था। इसलिये युवराज अवस्थामें आप प्रजावत्सल और विजयी थे।

ई०पू०२६१ की विजयके वाद अशोकको कलिगसे धनरत्न संग्रह करनेका प्रमाण हमें कहींसे नही मिलता है। उनकी विजय और विजयके वाद का व्यवहार खारवेलकी विजय और व्यवहार से बिल्कुल निराला था। खारवेल ने अशोकसे कहीं अधिक राज्यको जीता था। किन्तु राज्य जय ही उनका ध्येय नही था। विजित राज्यसे लगान वसूल करके उस धनको जैनोंके लिये और कलिंग नगरकी उन्नति साधनके लिये खर्च करनेका प्रमाण हमें हाथीगुफा शिलालेखसे मिलता है। दिग्विजयी की हैसियतसे उन्होने मगध और पाण्ड्य राजाओं को लगान देनेके लिये मजबूर करना पडा था। जैन धर्मकी साधनामें 'परिग्रह त्याग' ही साधकोका पहला अवलम्बन और सोपान है। ससारकी सभी प्रकार मोह और माया परित्याग पूर्वक नि स्व भावसे जैन लोग साधनामें निरत रहते हैं। परतु जैन सम्राट खारवेलका जीवन दूसरे उपादानमें गठित हुआ था। धनरत्नको पूर्णत छोडना उनके लिए असभव था। अधिकन्तु

* शिलालेखसे प्रगट है कि अपने अतिम जीवनमें खारवेलने धर्मसाधना में अपने को लगा दिया था। अलवत्ता खारवेलने अशोककी तरह धर्मलेख नही खुदवाये थे। —स०

वह एक जैन ग्रहस्थ के श्रावक धर्मके अनुरूप दूसरे देशोसे धन लाकर अपने साम्राज्यकी उन्नति करते थे। शायद इसलिये दाक्षिणत्यको धन रत्नका भडार समझकर, उत्तर भारतको छोड़कर उन्होने दक्षिण भारतका आक्रमण किया था। हाथी गुंफा शिलालिपमे यह भी मालूम होता है कि खारवेलकी उत्तर भारत विजय की खबर सुनकर पाड्य राजाको अमूल्य रत्न उपहार देना पडे थे। शिलालिपमें और भी यह है कि उन्होने विद्याधरोको जीतकर उनसे भी धन उपहार लिखे थे।

इन सब दृष्टियोसे विचार करनेसे हमें मालूम होता है कि अशोक और खारवेलमें क्या विभिन्नता थी? कलिंग विजयके बाद अशोकको हमेशाके लिये राज्य जय-लिप्सा छोडना पडी। सिर्फ उतना ही नही उनके समसामयिक राजा और बुजुर्गोको भी दिग्विजय न करनेको उन्होने अनुरोध किया था। परन्तु अशोक की तरह खारवेलने सामाजिक उत्सवोका उच्छेद नही किया, अपितु प्रजाके साथ मिलकर वह त्योहार आदि मनाते थ।

प्रजाओंको धमानुचिन्ता और पूजा पद्धतिमें उन्होने किसी प्रकार के प्रतिबधकी सृष्टि नही की थी। सामाजिक उत्सवो के लिये वह अकुठित मनसे करोडों रुपये खर्च करते थे। जिन उत्सव के लिय हरसाल कईवार शोभायात्रा की तैयारी होती थी और खारवेल को भी उसमें भाग लेना पड़ता था। इन शोभायात्रायोमें सम्राटकी सवारी और राजछत्र आदिका प्रदर्शन भी आडम्बरके साथ होता था। धर्म निरपेक्ष खारवेल किसी भी गुणमें अशाकसे कम नही थे। परन्तु सहिष्णुता खारवेलमें ज्यादा थी। किसी साम्प्रदायिक मामलेमें वह कभी भी, अपने को सतप्त नही करते थे। परन्तु हरेक धर्मकी अभिवृद्धि उन की कामना थी।

जैनधर्मको सुप्रतिष्ठित करनेको उद्देश्यमें उनकी कर्मतत्प-

रता, प्रयत्न और दान इतिहासमें और हमेशा के लिये स्वर्णाक्षरो में अङ्कित रहेगा। उनके शासनमें जैनधर्म कलिंगमें उन्नति के शिखर पर पहुंचा था। मगधसे 'कलिंग जिन' का उद्धार करके उन्होने जातीय देवताकी पुनः संस्थापना की थी।

इसके बाद ही खारवेल के जीवनमें परिवर्तन का अध्याय आरंभ हुआ था। धीरे धीरे जैन धर्मका आदर्श उनमें अभिभूत हुआ था। राजत्वके चौदहवें सालमें महामेघवाहन सम्राट खारवेलको हमेशाके लिये कलिंग इतिहाससे बिदा लेकर अनन्त विस्मृति के गर्भमें लीन होना पडा। इसके बाद उनके विषयमें जाननेके लिए कोई साधन नही है।

इस प्रकार मात्र सैंतीस सालकी छोटी उम्रमें कलिंगकी राजनीतिमें उथल पुथल मचाकर खारवेल विदा होते हैं। आगे चलकर हाथीगुफा अभिलेखमें खारवेलके बारेमें और कुछ घटनाएँ नही पायी जातीं। इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि खारवेलने मुक्ति की खोजमें खडगिरि या उदयगिरिकी किसी अज्ञात जगह में शरण ली थी। यही सच्चे जैन जीवन की कामना है।

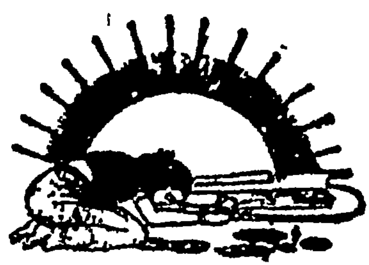

७. कलिंग में खारवेल के परवर्ती युगमें जैन धर्म की अवस्था

सम्राट् खारवेलके बाद और महाराज महामेघवाहन कुदेपश्री या कदर्पश्री ने कलिंग सिंहासन आरोहण किया था। उनके बाद चेतिवंशकी हालत क्या हुई, यह जानना मुश्किल है। मंचपुरी गुफामें जिनकुमार वड्खके नामका उल्लेख किया गया है उनका कदर्पश्री के उत्तराधिकारी होकर राज्य शासन करना अनुमानित किया जासकता है। परन्तु यह निश्चित है कि उस समय तक चेतिवंशकी पूर्व वैभव और शक्ति नहीं बराबर रह गई थी। डॉ० कृष्णस्वामी आयागार ने दो तामिल ग्रंथो, यथा 'शिलपथीकारम्' एवं 'मणिमेखलायी'मे वर्णित कई विवरणो से तत्कालीन कलिंगका परिचय कराया है[1] उन दोनो ग्रन्थोंमें कलिंग राजवंशके दो भाइयो के विवादका वर्णन दिया गया है; इससे मालूम होता है कि कलिंग राज्य उस समय दो खण्डोमें विभक्त हुआ था। एक की राजधानी थी कपिलपुर और दूसरे की सिंहपुर। इन दोनो राज्योमें जो दो भाई राजत्व करते थे वे अनुमानित चेतिवंश सभूत और खारवेलके वंशधर ही होगे। इन दोनो भाइयोके आपसी तुमुल युद्ध होने के कारण कलिंग छार-खार हो गया था। और बादको एक वैदेशिक आक्रमण के वश में फस गया था।

---

1 Ancient India and South Indian History and Culture, Vol I pages 401-402,

ये वैदेशिक आक्रमणकारी कौन थे, और इनके राजत्व कालमें कलिंगमें जैनधर्मकी हालत कैसी थी; इसका विचार नीचे किया गया है।

"मादलापाजि" का कथन है कि कलियुग प्रारंभ तक युधिष्ठरासे लेकर १७ राजाओने परम्परिक क्रमसे ३७८२ वर्ष तक राजत्व किया था। इस राज परम्पराके राजा शोभन देव हैं। उस समय दिल्लीके भोजक पातिशा (बादशाह) के सेनापति रक्तबाहुने 'चिलका' देकर उडीसा पर आक्रमण किया था। बादको अष्टादशराजाके समयमें उडीसा पूरी तरह इन मुगलोंके हस्तगत हुआ था, मुगलोने उडीसामें ४७४ ई० तक २४६ वर्ष राजत्व किया था और इसके बाद ययातिकेशरी ने उनको परास्त करके भगा दिया था। यही हैं 'मादला पाँजि के' वर्णित उपाख्यान।

इसमें कुछ काल्पनिक विषय होने पर भी मूलतः यह एक ऐतिहासिक सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित हुआ मालूम पडता है क्यो कि प्राचीन उडीसामें एक विदेशी राजवंश की बहुतसी मुद्रायें अब मिली हैं। इन सभी मुद्राओंकी तैयारी कुशाण मुद्राकी तरह होने से पुरातत्वविदों ने उनको "कुशाण मुद्रा" कहा है। पहले पुरीके आसपास ये मुद्रायें खूब मिलती थी। १६ वी शताब्दीके मुद्राविद्–जैसे हर्णले और रेपसन-दोनो इन मुद्राओंको "पुरी-कुशाण मुद्रा" कहते हैं।[2] उनके मतानुसार इन मुद्राओका प्रचलन यहा के किसो राजवंश द्वारा नही हुआ था। पुरी जगन्नाथ महाप्रभूके दर्शनके लिये आते हुये असंख्य यात्रीयोके द्वारा वे सब मुद्रायें यहाँ लाई गयी थीं। पुरीके आसपास ही जिस समय ये मुद्रायें मिलतीं थी उस समय इन पंडितो की युक्ति

2 Proceedings of Asiatic Society, Bengal, 1895 page 63.

ग्रहण योग्य हो सकती थी। किन्तु अब तो उड़ीसा के सारे प्रान्तोंमें गंजामसे लेकर मयूरभंज तक बल्कि छोटानागपुर तक भी ऐसी हजारों मुद्रायें मिली हैं[3] । अत यह कहना कि ये सब मुद्रायें जगन्नाथ पुरी के यात्रियो द्वारा उड़ीसामें लाई गईं युक्ति संगत नही है। बल्कि सच तो यह है कि ये सभी मुद्रायें कलिंगके वैदेशिक शासकों द्वारा प्रचलित की गईं थीं।

उड़ीसामें इसप्रकार की मुद्राओंका चलन करने वाले ये वैदेशिक शासक कौन थे? वे किस वंशके और कहां से आये थे? ये प्रश्न उठते हैं।

इन सब प्रश्नोंका समाधान करना आसान नही है। राखाल दास बानर्जी कहते हैं कि संभवत ये वैदेशिक शासक कुशाण थे।[4] क्योंकि इन मुद्राओंमें से बहुत सी मुद्रायें बिलकुल कुशाण प्रचलित मुद्राओं जैसी हैं, कुशाण मुद्राओं में जिस तरह एकओर कनिष्क और हुविष्क और राजा वसुदेवकी प्रतिच्छवि ओर दूसरी ओर माओ (चन्द्र), अन्त (अग्नि) और आडो (वायु) आदि देवताओंकी तस्वीरें रहती हैं, उसी तरह उड़ीसा में मिली हुई वैदेशिक मुद्राओं में भी कई मुद्राओं में वैसी ही प्रतिच्छवि और प्रतिमूर्ति अङ्कित हैं। डॉ० अतिवल्लभ माहाति ने राखालदास बनर्जी की युक्तिको माना है। ऐतिहासिक एस० के० बोस कहते हैं कि कुशाणोंने बंगदेश तक अपना साम्राज्य फैलाया था।[5] किन्तु कुशाण साम्राज्य बनारस से आगे पूर्वांचल तक पहुँचने का कोई विश्वसनीय प्रमाण अबतक नहीं मिला है। इसलिये कुशाण साम्राज्य बंगदेश तक व्याप्त होने की युक्ति अमूलक मालूम होती है। कुशाण साम्राज्य जब बंगदेश

---

3 O H R. J Vol II, page 84
4 History of Orissa, Vol, I page 113
5 Indian Culture, vol. III, 729 ff

तक परिव्याप्त नहीं हुआ था तब उसकी उडीसामें आने की बात पूरी मिथ्या प्रतीत होती है। इससे 'मायला पाजि' वर्णित मुगल आक्रमण कुशाण आक्रमण नहीं हो सकता। यह कुशाणके अतिरिक्त दूसरा कोई वैदेशिक आक्रमण होना निश्चित है।

अब डॉ० नवीनकुमार साहु प्रमाणित करते हैं कि 'मायला पाजि' वर्णित उडीसामें मुगल आक्रमण वस्तुत. मुरुड आक्रमण और आधिपत्य होना चाहिये।[6] इन मुरुंडोंके बारेमें पुराण, जैन शास्त्र, ग्रीक और चैनिक लेखकों के विवरणोंमें उल्लेख मिलते हैं। पुराण-मतसे तुखार (कुशाण) के बाद १३ मुरुड राजाओं ने दो सौ वर्षों तक राजत्व किया था।[7] मुरुड वर्णना से जैनशास्त्र भी भरपूर है, क्योंकि मुरुड राजालोग जैन और जैनधर्मके पृष्ठ पोषक थे।

'सिंहासन द्वात्रिंशिका'[8] नामक एक जैन ग्रन्थ से मिलता है कि मुरुंड राजाओंकी राजधानी कान्यकुब्ज थी, परन्तु कान्यकुब्ज में मुरुड बहुत काल तक राजत्व करते हुये मालूम नहीं होते। 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' पुस्तक में जिस मुरुडराज का उल्लेख हैं उसका कुशाणों के अधीन एक सामंत राजा होना निश्चित है। 'वृहत् कल्पतरु' नामक एक दूसरे जैन ग्रन्थ से मालूम होता है कि मुरुडों की राजधानी पाटलीपुत्र[9] थी। और मुरुड राजा की विधवापत्नी ने जिन-पथ का अवलंबन

---

6. A History of Orissa Vol, Edited by Dr. N.K. Sahu. Pages, 331-335
7. Dynastic History, Kalinga Age, by Pargiter, Page. 46
8. Dr. Probodh Chandra Bagchi's Speech in Indian History Congress,
९. अभिधान राजेन्द्र कोष, भा० २ पृ० ७७६

करके इस धर्म की अभिवृद्धि-साधन के लिये अपना जीवन ही न्योछावर कर दिया था। जैन पुराणोसे और भी मालूम होता है कि पादलिप्त नामक जैन साधु ने पाटलिपुत्र के मुरुड राजाके मस्तिष्क रोग को अच्छा किया था।[10] ये साधु पादलिप्त उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्य के जैनगुरु सिद्धसेन के मानो समसामयिकही थे। ग्रीक् भौगोलिक टोल्मी ने[11] पूर्व भारतमें मुरुड राज्य की भौगोलिक सीमारेखा निर्णित रूप में बताई है। उनके लेखसे मालूम होता हैं कि ई० द्वितीय शताब्दी में मुरुड राज्यका विस्तार तिरहुत से गगा नदी के मुहाने तक हुआ था। चीन देशके वु (Woo) राजवश के विवरण से[12] भी जान पडता है कि ई० तीसरी शताब्दीमें मुरुड पूर्व भारत में राजत्व करते थे, जैसे कि फरासीसी पडित सिलवाँलेवि प्रतिपादन कर गये हैं।

इस प्रकार उडीसा में रक्तवाहु का आक्रमण वास्तवमें पूर्व भारतीय मुरुडो का आक्रमण था और यहा से प्राप्त असख्य मुद्रायें जिनको कुशाण मुद्रायें अनुमानित किया गया है यथार्थमें इन मुरुडो द्वारा प्रचलित मुद्रायें थी। १९४७सालमें शिशुपालगढ मे जो पुरातात्विक भूखोदन हुआ था, उसमे उडीसामें जैन मुरुड के राजत्वका सुस्पष्ट प्रमाण मिल चुका है। इस भूखोदन से मिली हुई एक स्वर्ण मुद्राके वारेमें आलोचना करते हुय डॉ० अनत सदाशिव आल्टेकार कहते हैं कि यह मुद्रा "महाराजाधिराजा धर्मदामधर" नामधेय किसी एक मुरुड राजा द्वारा प्रचलित की गई थी। डॉ० आल्टेकार आगे और भी कहते हैं कि यह मुरुड राजा ओडीसामे ई० तीसरी शताब्दी में शासन

---

१०. इडियन कल्चर, भाग ३ पृ० ४९

११ इडियन एन्टीक्वेरी, भा० १३ पृ०३३७

१२ सिल्वा लेवी, Melanses Charles de Harlez pp 176 186

करते थे और ये जैन थे।[१३]

शिशुपालगढ से एक मृण्मय फलक मिला है जो संभवतः एक सील मोहर है। उसमे लिखा है— "अमचस पसनकस" अर्थात "अमात्यस्य प्रसनकस्य" । अत: यह फलक अमात्य प्रसन्नक की सील मोहर होना सभव है। इस फलकमें लिखे हुए अक्षर और उपरोक्त स्वर्ण मुद्रा में व्यवहृत हुए अक्षर एक समय के ही मालूम होते हैं। अगर यह सच है तो प्रसन्नक को महाराज धर्मदामधरका अमात्य माना जासकता है।[१४]

डॉ० नवीनकुमार साहुने प्रमाणित किया है कि उडीसा में मुरुड राजत्व ई०दूसरी शताब्दीके शेषभागसे ई०चौथी शताब्दी के मध्यभाग तक प्रचलित था[१५]। लेकिन 'मादलापाजि' में उल्लेख है कि मुगल राजत्व ई० ३२७ से ४७४ ई० तक चला था। 'मायला पाजि' के इस मुगल राजत्व को डॉ० नवीनकुमार साहुने मुरुड राजत्व माना है और इस राजत्वके काल निर्णय में मायला पाजिकारने जो भूल किया है उसे ऐतिहासिक प्रमाण भित्तिसे सशोधन किया है।

इस प्रसंगमें बौद्धग्रन्थ 'दाठाधातु वश'में लिखित बुद्धदत्त का उपाख्यान भी अलोचनीय है। इसमें लिखा है कि चौथी शताब्दीके आरम्भमें कलिंगके राजा गुहशिव थे। सभवतः यही गुहशिव राजा मुरुड हो सकते हैं। वे पहले जैन थे और बाद को अपनी राजधानी दतपुरमें बुद्धदतकी महिमा से मुग्ध होकर वे बुद्ध हो गये थे। इससे पाटलीपुत्र के जैन राजा पाडु विक्षुब्ध हुए थे। इस पाडुको भी डॉ० नवीन कुमार साहुने एक मुरुड राजा लिखा है। कलिंगके गुहशिवको पाडु राजा के सामंतराज

---

१३ ऐन्शियेंट इन्डिया, न० ५ शिशुपालगढ उत्खनन रिपोर्ट
14 S. C. De, O. H, R. J, vol. II, No. 2
१५. डॉ० साहू, ए हिस्ट्री ऑव उडीसा, भा० २ पृ० ३३४

रूपमें 'दाठाधातु वशमें' भी वर्णित किया गया है।

गुहशिवके धर्मांतर ग्रहणसे विचलित होकर पाडु राजाने उन्हें अपनी राजधानी पाटलीपुत्र को वुद्धदतको साथ लिये चले माने के लिए आदेश दिया। पाटलीपुत्र में दतधातुको नष्ट कर देने के लिए वहुत कोशिश करने पर भी वे मफल काम न हो सके। और वादको दत की अद्भुत शक्ति देखकर खुद भी वौद्ध हो गये। वादको इस दतपर अधिकार करने के लिये कलिग के पडोसिओ ने कलिग पर धावा किया था। इन आक्रमणकारियो में क्षीरधार प्रधान थे। इस क्षीरधार को श्री युक्त सुशील-चन्द्रने वाकटाक राजा और प्रवरसेन अन्दाज किया है[16]।

युद्धमें गुहशिवने प्राणत्याग किया परन्तु मृत्युके पूर्व ही उन्होंने अपनी कन्या हेममाला और दामाद दतकुमार के हाथो वुद्ध दतको सिहल भेज दिया था। जव हेममाला और दतकुमार सिहल पहुचे तो उस समय वहा के राजा महादिसेन थे। इनके राजत्व कालका समय ई० २७७ से ३०४ तक होता है[17]। सुतरां कलिगमे गुहशिव का तीसरी शताब्दीमें राजत्व करना सुनिश्चित है।

मध्य युग

यह तो प्राचीन युग का विवरण है। अव देखना है कि मध्य युगीय उडीसामें जैन धर्मकी हालत कैसी थी? कलिगमें मुरुड शासनके अवसान के वाद गुप्तवश का आधिपत्य होंना ऐतिहासिक प्रगट करते है। गुप्त राजवशका राजनैतिक प्रभाव समुद्रगुप्त की दिग्विजय के वाद से पडना सुनिश्चित है। इस राजनैतिक प्रभावके साथ सास्कृतिक प्रभाव भी अप्रतिहत भाव

16. O. H. R. J. Vol III, No 2 P. 104

१७- वाकटक एण्ड गुप्त एज, डॉ० आल्टेकर और डा० माजुमदार कृत-अ० 'सीलोन' पृ० १३१-१६१

से पड़ा था, लेकिन इन बातोकी गवेषणा आज तक धारावाहिक रूप से नही हो सकी हैं।

गुप्तोत्तर युग ही मध्य युग है। (इस समय जो सुविख्यात राजवशोंने उड़ीसा के भिन्न भिन्न प्रातो में राजत्व किया था उनमें से उल्लेखनोय नग वश, कगोदर शैलोद्भव वश, तोषल के भौम वश, खिजली मडल का भज वश और कोशलोत्कल का सोम वश थें। इन सोम वंशीय राजाओ को मादला पांजिकार केशरी वशीय कहते है। इन राजवंशोके राजत्व कालमें ब्राह्मण धर्म और खासकर शाक्त, शैव और वैष्णव धर्मों का प्राधान्य चारो ओर दिखाई देता था। अत यह युग उडीसा में बौद्ध और जैनोके अधःपतन का काल प्रतीत होता है)। उड़ीसा में बौद्ध धर्म अपनी अस्तित्व रक्षा करने के लिये तान्त्रिकता का आश्रय लेकर वज्रयान और सहजयान आदि पथोमें परिणत हो गया था, लेकिन जैन धर्मके तान्त्रिकता का सहारा लेनेका सुस्पष्ट प्रमाण नही मिलता है। अपनी प्राचीन परपरा की रक्षा करके जैनधर्म मध्ययुगमें भी गतिशील बना हुआ दिखायी देता है। प्राचीनकाल की तरह उस समय भी खडगिरी (उडीसा) में जैनधर्म की पीठभूमि थी। खडगिरि के कई गुफाओं में जैसे नवमुनि गुफा, वारभूजी गुफा, और ललाटेंदु केशरी गुफा-इस मध्ययुगमें ही निर्मित हुई थी। (उडीसा के चारो ओर खास कर के दुमरु के आनदपुर प्रात, कटक जिल्लाके चोद्वार प्रात, पुरीकी प्राची उपत्यका, गजामके घुमुसर प्रांत और कोरापुट के नवरगपुर अंचलमें जैनधर्म के पुरातात्विक अवशेष अब बहुत मिले हैं। वह सब मध्य-युग की कीत्तियाँ हैं। आज यह सब कुछ देखने से मन में यह धारणा दृढ़ होती है कि मध्य-युग में जैनधर्मका प्रभाव उडीसा के धर्म जीवन में अप्रतिहत था- उसका प्रभाव तब भी उत्कल में व्याप्त था)।

उत्कल में राजत्व करने वाले सोम वंशी राजाओं में उद्योत केशरी सब से प्रसिद्ध नरपति थे। कोई कोई उन्हें ललाटेंदु केशरी भी कहते हैं। उद्योत केशरी शैव धर्म के पृष्ठपोषक के नामसे इतिहास में विख्यात हैं। उनके पिता ययाति महाशिव गुप्तने भुवनेश्वर में सुप्रसिद्ध लिंगराज मंदिर का निर्माण कार्य आरम्भ किया था। इस मंदिर की परिसमाप्ति राजा उद्योत केशरीने कराई थी। उद्योत केशरी की माता कोलावती देवी ने भुवनेश्वर में चारुकला खचित ब्रह्मेश्वर मंदिर तैयार कराया था। उद्योत शिवभक्त होने पर भी जैनधर्मकी ओर प्रगाढ़ श्रद्धा और अनुराग रखते थे। खंडगिरि की ललाटेंदु केशरी गुफा उनकीही कीर्त्ति है, इस में कोई सन्देह नहीं। जैन अर्हत और साधुओंके लिये सम्राट खारवेलने जिस तरह पर्वत में बहुत से गुफायें खुदाई थीं, उसी तरह उन जैन सम्राट का पदानुसरण कर उद्योत केशरी ने भी जैनो के लिये विश्राम स्थल, और आराधना मंदिर के लिये खंडगिरि में गुफायें निर्माण कराई थीं। केवल 'ललाटेंदु केशरी गुफा' ही नहीं बल्कि नवमुनि और बारभूजी गुफायें भी इस काल की कीर्त्तियां हैं। ऐतिहासिकों का कथन है कि नवमुनि गुफा में उद्योत केशरी के राजत्वकाल का एक शिलालेख अब भी है। उद्योत केशरी के राजत्व कालके अष्टादशवें वर्षमें यह शिलालेख उत्कीर्ण हुआ था। याद रखना होगा कि ठीक इस वर्ष उद्योत की माता कोलावती देवी ने भुवनेश्वर में ब्रह्मेश्वर के मंदिर निर्माण कार्य पूर्ण किया था। इससे मालूम होता है कि उस समय शैव और जैनधर्म समान्तराल भाव से उडीसामें प्रचलित थे। और राजा उद्योत केशरी दोनो धर्मोंको एक नजरसे देखते थे।

नवमुनि गुफा की [18] शिलालिपि से जान पड़ता है कि

---

18 एपीग्रेफिया इंडिका, १३ १६५-६

उद्योतकेशरी के अष्टादश वर्ष राजत्वकालमें सुविख्यात जैनसाधु कुलचद्र के शिष्य आचार्य शुभचद्र तीर्थयात्रा के लिये खडगिरि आये थे, और वहा वे कीर्त्तियां स्थापन किये थे। आचार्य शुभचंद्र के प्रति राजा उद्योतकेशरी का भव्योपयुक्त सम्मान प्रदर्शन करना शिलालिपि से जान पडता है। ऊपर लिखी हुई आलोचना से मालूम होता है कि मध्ययुगीय उडीसा में एक समय जैनधर्म राजाओ की पृष्ठ-पोपकता लाभ करके समृद्धि वंत हो सका था। उडीसा के नाथ धर्म में भी जैनधर्म का प्रभाव अतिमात्रामें पडा था। जैनधर्मका समृद्धि साधन खास कर न होता तो इतना प्रभाव पडना सभव नही हो सकता था। परवर्त्ति युग के अरक्षित दास पथ और महिमा पंथ आदि धर्म सस्थाओमें भी जैन धर्मके बहुतसे आचार तत्व और दर्शनकी अभिव्यक्ति और समावेश देखनेको मिलता है। और यह दिखा देता है कि जैनधर्म की समृद्धि प्राचीन कालसे शुरू होकर मध्ययुग तक अव्याहत चलती रही थी। उडीसाके सास्कृतिक जीवनमें जैनधर्म किस तरह अपना प्रभाव फैला सका था इस की विशद आलोचना आगे की जायगी।

आज कल आधुनिक युगमें भी उड़ीसा के धर्म जीवन पर जैनधर्मका जो प्रभाव फैल रहा है यह अनुसधान की वस्तु है। आज भी खंडगिरि केवल जैनो की नहीं हिंदुओ की भी एक परम पवित्र तीर्थ भूमि है। माघ शुक्ल सप्तमीके दिन हर साल यहाँ जो मेला लगता है उसमें हजारो यात्री यहा इकट्ठा होकर सिर्फ अरक्षित दासकी स्मृतिपूजा करते हैं, यह नही बल्कि जैन तीर्थंकरो की प्रतिमूर्त्ति और उनके शासन देवताओ के उद्देश्य में भी सेवा पूजा करते हैं।

८. उत्कल की संस्कृति में जैन धर्म

उत्कलमें अत्यन्त प्राचीनकाल से एक प्रधान धर्मके रूपमें जैनधर्मका प्रचलन है। इस प्राचीन धर्मका प्रभाव उत्कल के सांस्कृतिक जीवनमें अनेक रूपमें परिलक्षित होता है। इतिहास से प्रमाणित होता है कि उत्कलके विभिन्न अचलोंमें "भजवंश" का राजत्व था। "भजवंश"वाले कोई कोई शैव भी थे और कोई-कोई वैष्णव, फिर भी ऐसा मालूम पड़ता है कि इन लोगों में जैन-संस्कृतिका प्रभाव भी अक्षुण्ण था। इस वंशका एक ताम्र शासन केन्दुझर जिला के उखुंडा नामक ग्राममे मिला था, उससे विदित होता है कि "भजवंश" के आदि पुरुषोंकी उत्पत्ति कोट्याश्रम नामक स्थलमें मयूरके अंडेसे हुई थी। संभव है, यह कोट्याश्रम जैन हरिवंश में वर्णित अनन्य मुनिजनाध्युषित कोटिशिला ही हो। मयूरके अंडेको विदीर्ण करके (मयूराड भित्वा) वीरभद्र "आदिभज" के रूपमें अवतरित होना उसमें वर्णित है। यह मयूरी साधारण नहीं, वर जैनोंके पुराणों में वर्णित श्रुतदेवी की वाहिनी थी। साधारण मयूरी के डिंब से मानवकी उत्पत्ति भला कैसे संभव होती? हरिचन्द ने स्वरचित 'संगीत मुक्तावली' में अपने वंश परिचयके प्रसंगमें लिखा है कि उनका वंश श्रुति-मयूरिका से उत्पन्न है। हरिचन्द कनका के राजवंशीय थे और उनकी रचनायें १६ वीं शती की रची हुई थीं। उपर्युक्त श्रुति, श्रुतिदेवि अथवा सरस्वती ही है। जैनमत में सरस्वती का वाहन मयूरी है। इससे प्रतीत होता है कि

"भंजवंश" की धार्मिक मान्याताओं पर जैनधर्मका प्रचुर प्रभाव था। प्रोक्त उखुड आम्र शासनमें वीरभद्र गणदण्डका भी उल्लेख है। यह गणदण्ड जैन पुराणोक्त गणधर, गणी, गणेन्द्र प्रभृति शब्दो का एक पर्याय मात्र है।

उत्कलका उत्तरांश एक समय तोषालीके नामसे अभिहित था। तोपाली में शैलपुर के नामसे एक जैन तीर्थ भी विद्यमान था। भरुकच्छके वाणव्यन्तर और अर्बुद पर्वतके प्रभासतीर्थके समान ही शैलपुरकी भी ख्याति जैनोंके बीच थी। यह शैलपुर राजगिरि (राजगृह) का ही नामांतर मात्र है। विपुला नामक पहाड़ियो से घिरे रहने के कारण इसका इस प्रकार का नामकरण हुआ। भ० महावीर के धर्म प्रचारका प्रधान पीठ होने के कारण इस राजगिरि या शैलपुर के अनुकरण से आगे भी इसी नामसे विभिन्न स्थानोंमें जैनपीठोंकी स्थापना हुई प्रतीत होती है। तोपाली में शैलपुर नामक तीर्थके होने की बात जैन ग्रन्थों से भी विदित होती हैं। वहां पर एक ऋषि पुष्करिणी भी थी। यहा पर आठ दिनो तक प्रति वर्ष शरदोत्सव भी मनाया जाता था। आजकल यह ऋषि पुष्करिणी कहा और किस नामसे परिचित है? यह गवेषणाका विषय है, जो आजतक नही हो सका है।

केंदूझर जिला के आनन्दपुर सबडिविजन में पोडासिंगिडी के नाम से एक ग्राम है, जो आनन्दपुर से ९ मील की दूरी पर है। वहा पर प्राय एक वर्ग मील की क्षेत्राकार भूमि को 'बउला' नामक पहाड़ियों ने घेर रखा है। एक ओर ध्वस्त प्राचीरों के अवशेष हैं। वहाँ पर तीर्थंकरो की तथा यक्ष और यक्षिणियों की सैंकडो मूर्त्तिया इत स्ततः पड़ी है। कोई आधी गडी हुई, कोई सीधी और कोई टेढी खडी हुई, कोई उत्तान लेटी और कोई टूटी हुई, हैं। पर्वत पर खोदी हुई सीढियो पर चढकर अधित्यका तक पहुचने पर एक विशाल तीर्थंकर मूर्ति

दिखाई पडती है, जो भ॰ महावीर की ही मूर्ति है। यह स्थान पहले तोपाली में अतर्भुक्त था, इसलिए नि सदेह इसे तोषाली में स्थित शैलपुर माना जा सकता है। शैलो से परिवेष्टित नगरी को शैलपुर ही कहना उचित है। राजगिरिकी अवस्थिति शैलवलय के बीच होने के कारण उसे शैलपुरके नाम से पुकारा जाता था। यह स्थान भी वैसी ही अवस्थिति में हैं। राजगिरि के चतुर्दिक जिन पहाडियो की अवस्थिति है, उन्हे विपुला के नाम से पुकारा जाता है और इस स्थान के पहाडो को भी वाउला के नाम से। उभय स्थानो का यह सादृश्य विचार का विषय है। वे एक विंदु के समान गोलाकार भी हैं। वैसी ही साम्यता वहा पर भी विद्यमान है। इन सारी बातो पर विचार करने से उत्कल में जैनधर्म की प्राचीनता सहज ही प्रमाणित होती है।

लोकगीतो के प्रमाण भी उपर्युक्त तथ्य के सत्य होने की घोषणा कर रहे है। उत्कल के सपेरो (केला) द्वारा गाए जाने वाले कमल तोडने के गीत में है कि कस की स्त्री पद्मावती ने धनीश्री का व्रत किया था।[1] अत कस ने कृष्ण जी को एक सौभार पद्म तोडने का आदेश दिया। इसीलिए कालिंदी में कमल तोडने के ख्याल से कृष्ण जी ने प्रवेश किया। इसी समय कालीय ने जब दशन करना चाहा तब श्री कृष्ण ने उस का मर्दन किया।[2] लेकिन हिन्दुओ के विष्णु पुराण, हरिवंश

१- "कसर घरणी पद्मावती राणी करिछि धनिश्री ओषा,
शएभार पद्म देबुरे कन्हाइ न थिब पालडा मिशा।"

२- कवि दीनकृष्णदास का "रसकल्लोल" इसी लोक-प्रवाद से प्रेरित है
"कुजविहारी विहरते गोपनरे,
कस आशाभासी लागिला नन्दकु देव कमल शते भार,
काले नन्द भय न दिशे उपाय के देव पद्म फूल तोली,

जो प्राणी (सांसारिक) कर्मोंके आचारणों में निरत रहता है
व्यर्थ ही (उन कर्म बंधनों मे पड़ कर) वह घोर नरक का
भागी बनता है।

जो सत्वगुण से प्रेरित है और ब्रह्मकर्म करता है
तथा अनन्त की जय आराधना करता है, मैं सच कहता हूँ
वह (वेद) विहित निर्वाण मार्ग है।

जगत में स्त्री सम्भादि कर्म तमस का द्वार है
इन द्वारो का परित्याग करके महत् जनों की सेवा
करनी चाहिए।

जो मेरे पदों पर प्रमाद रहित होकर अपने मन को
अर्पित करता है,
जो क्रोध विवर्जित है और सारा जगत जिसका सुहृद मित्र है
वही महत जन है और प्रशांत साधु भी वही कहलाता है,
जो जन मुझे नहीं भजता है और अनित्य देह को नित्य
समझ कर
जाया, गृह, धन और तनयादि के भ्रम में पड़ कर
नाना कर्म क्लेश सहन करता है
वह साधु नहीं है।

जब तक आत्मा को (मनुष्य) पहचान नहीं पाता है
तब तक (भ्रम में पड कर) पराभव का भोग करता है,
निरंतर मन को बहका कर जबतक (मनुष्य) नाना कर्म
मे प्रवृत रहता है
तब तक कर्मवश होकर वह नाना योनियोंमें जन्मलेता है।
मैं अव्यय वासुदेव हू, मुझ में जिसकी प्रीति नहीं है
वह देह और बंधु के परे नहीं है इसलिए
वह ईश्वर को पहचानता नहीं।
स्वप्नवत् (क्षणिक) इस देह पर (मनुष्य) नाना अहकार

रखता है।

जैसे निद्रा में (हम) सुख भोगते हैं, पर जागृत में उस
का कोई लाभ हमें नहीं मिलता।

गृहवास में नारी के साथ अनुदिन रहकर
उसके साथ पति पत्नी का संबंध रखकर
(मनुष्य) मेरा गृह, मेरा धन, यह जन और नारी में
आसक्त होकर बद्ध रहेगा
तब तक उसके सारे कर्म-बंध खंडित नहीं होंगे।

× × ×

मैं हरि हूं, अखिल (लोक) का गुरु हूं,
मेरी शरण ग्रहण ही करो।
जो निश्चल चित्त होकर मेरे पदों पर भक्ति रखता है,
हिंसा और स्वजनों से परे होकर मेरी आराधना करता है,
मेरे गुण और कर्मों का निरन्तर कीर्तन करता है,
एकांत भाव से मुझे याद करता है,
इन्द्रियों के दमन तथा सम्यग्ज्ञान क्रिया के आचरण पूर्वक,
श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करता है
(तथा) क्रोध और मत्सर से रहित है,
उसका गृह बंधन नहीं है और वह भवजाल से मुक्ति
पाता है।

उसके कर्म-बंधों को अशेष ही मैं काट देता हूं,
जिन कर्मों से आत्मा का पतन है उन कर्मों पर आदर लोग
श्रद्धा नहीं रखते और वे सुख के लिए अतिश्रम होकर
अनेक दुखों का कारण अनेक हिंसा का आचरण करते हैं
उनकी दृष्टि नष्ट हो जाती है और वे अविद्या में प्रविष्ट
होते हैं।

× × ×

(चैतन्यदास रचित विष्णुगर्भ पुराणके ६ठे अध्यायमें भी ऋषभ-भरत का संवाद है। अलेख पंथका यह एक प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें अलेख पंथकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया गया है अत भरत आदि १० पुत्र अपने पिता ऋषभदेव से अलेख धर्मकी दीक्षा लेते इसबातका इसमें उल्लेख है। उत्कलमें प्रचारित यह अलेख धर्म जैनधर्मका ही एक दूसरा स्वरूप है। विष्णुगर्भ पुराण के ७वें अध्याय में मिलता है कि ऋषभदेव विष्णु के गर्भमें न जाकर वैकुंठ को गए हैं। इसमें ऋषभका महत्व विशेष रूपमें प्रतिपादित किया गया है। पूर्वोक्त, भागवतसे उद्धृत ऋषभके जैसे विष्णुगर्भ पुराणकी हितवाणी में भी जैनधर्म के तत्व स्पष्टता परिलक्षित होते हैं)।

(इन्द्रियों को दृढ़ता से बांध कर रखो,
जैसे राजा दोषियों को बंदी बनाकर रखता है।
माया (कपट) और मिथ्या भाषी न बनना,
जानते हुए भी अनजान के जैसा रहना,
सत्य का व्रत धारण करते हुए सत्य ही बोलते रहो
कुपथ की कल्पना मन में भी न लाओ,
गृह में रहते हुए भी अत्यंत विषय जंजाल में न फंसना
पुण्यकर्म का ही बराबर सम्पादन करो और अकर्ममें न चलो,
लाभ से सुख अथवा हानि से दुख न मानो और
सर्वभूत में अपने को देखो,
सर्वभूत में दया भाव रखो और निरीह प्राणियों
पर क्रोध द्वेष न रखना।
विष्णु पर भक्ति रखने वाले लोगों की बातों से प्रवर्तित
होकर
सदा विष्णु भक्ति रस में रत रहना।
कुसंग परित्याग कर सत् संगति में रहो और

अनुराग भक्ति के व्यापार में लगे रहो।
इस तरह जो बातें परिग्रह मालूम किन्तु भक्ति में प्रवेश
करता है
उसे भक्ति का दिव्य निर्मल प्रकाशित करने वाले ज्ञान
(प्रकाश) का दर्शन होता है।
जिसने लोगों के साथ (दुनिया) में प्रेम भाव था
जाऊँ (भक्ति मार्ग में आ जाने पर) फिर याद न करना।
इस तरह विपरीत मार्गों भी बहुत सी बातें कही गयी हैं:
साधना की विधि निश्चल प्यार का एक तन्तु है
बंधन को मना कर (फिर उसी तंतु में) मन लगा कर
(साधना की जा सकती है)।
मन के साथ साथ बिताएं उस तरह कठिन
रहती है जैसे पर्वत को मेघ घेरे रहते हैं।
ऋषभ ने कहा, हे पुत्रो! मेरी गोदी में बैठो
और मान पूर्वक संदेश की दीक्षा ग्रहण करो।
(तब) पिता को नमस्कार पूर्वक
सभी भाई दीक्षा ग्रहण करने के लिए
पिता की गोदी में बैठ गए।
पुत्रों को ऋषभ ने संदेश दीक्षा की ओर
ध्यान मग्न तथा मुद्राएं बताई।

[illegible] पद्मा नाम का [illegible] परिचित और चर्चित है। कथा है, [illegible] एक [illegible] बछड़े का [illegible] के लिए [illegible] गयी थी। वहाँ एक [illegible] हुआ। [illegible] ने उससे कहा मैं बछड़े को [illegible] आयी हूँ, [illegible] तब मुझे खाना। [illegible] गया, [illegible] भी बछड़े को दूध पिलाकर [illegible] पहुँच गयी, [illegible]

सत्यता पर। सत्यके प्रभाव ने हिंसक पशुको भी अहिंसक बना दिया। जैनधर्मकी अहिंसा का इस कथामें अच्छी तरह व्यक्त कर दिया गया है।

अब यह देखना है कि उत्कल के लोकाचार पर जैनधर्मका प्रभाव कहा तक पड़ा है। पहले जैनधर्म के कुछ मूल लक्षणों का विवेचन कर लेना आवश्यक होगा। कल्पवट इस धर्मकी एक विशिष्ट मान्यता है। सभ्यताके आदिकाल में लोग कृषि जीवी नही थे और इसी कल्पवृक्ष के प्रभावसे जीवनकी सारी आवश्यकताओ की पूर्ति कर लेते थे। यह कल्पवृक्ष जब अन्तर्हित हो गया और लोगो को खाने पीने का अभाव हो गया तब आदि तीर्थंकर ने लोगो को कृषि, पशुपालन तथा अन्यान्य उद्योगोंकी शिक्षाएँ दी[४]। कल्पवटकी पूजा जैनो का एक महान अनुष्ठान है। इसीके अनुकरण से पौराणिक हिन्दुओ ने कामधेनु की कल्पना की थी, इसी कामधेनु (सुरभि) के लिये विश्वामित्र ने वशिष्टके आश्रम पर आक्रमण किया था जैनोके इन अनुष्ठानमें हिन्दुओ को प्रेरित किया जिसमे प्रयागके कल्पवट की कल्पना हुई। सिर्फ इतना ही नही, कल्पवटसे कूदकर प्राणत्याग करने की प्रथाका सम्बन्ध जैनो के प्रायोपवेशनमें प्राणत्याग करने के साथ सम्बन्धित है, हिन्दू पुराणों में कल्पवटके प्रभूत महात्म्य वर्णित है। इस सम्बन्ध में पुराणो मे कई प्रकार के आख्यान भी मिलते हैं। जैनो के कल्पवट की धारणा ने हिंदू धर्म को कितना प्रभावित किया है, प्रयाग के कल्पवट की कथासे यह प्रमाणित होता है। इस कल्पवटके निकट कामना करके असाध्य साधन हो गया। उत्कलमें भी कल्पवटका महत्व अत्यधिक है। यहा लोग वटवृक्षकी उपासना करते हैं। वटसे जो प्रोहर निकलता है उसे शिवकी जटा समझी जाती है। जैनो के प्रभाव

[४] आदि पुराण तीसरा अध्याय, ३० पृष्ठ।

नाम ही वृषभ का प्रतिपद है।

जगन्नाथ जी के मदिर के वेढा (घेरा) में कोहली वैकुठ के नाम से एक स्थान हैं। यह कोहली शब्द तामिल के कोएल से अथवा सस्कृतके कैवल्यसे आया है, विचारणीय प्रश्न है कि हिंदुओ से मुक्ति मोक्ष शब्दादि की तरह जैनधर्म का कैवल्य शब्द भी एकार्थ वाचक है।[६] वस्तुत यह कैवल्य शब्द जैनधर्म का ही है जिसे उडियाने अपना बना लिया है। क्योकि प्राचीन हिंदू ग्रथोमें मोक्ष के अर्थ में कहीं भी कैवल्य शब्द का प्रयोग नही किया गया है।

जिन जिन तिथियोमे तीर्थङ्करोके गर्भावस्थान, जन्मतपम्या, ज्ञानप्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति हुई हैं, इन्द्रादि देवगण उन्हीं तिथियो मे उत्सव मनाते हैं। जैनधर्मी लोग भी पृथ्वी पर उन्ही तिथियो में चैत्रयात्रा करते है। चैत्य निर्मित रथ के ऊपर जिन देव की प्रतिमा रखकर नगर मे परिक्रमा कराने की विधि की चैतयात्रा करते है। सुसज्जित हाथी और गीत-वादित्रो के साथ इस उत्सवका परिपालन होता है। अभिधान राजेन्द्र अनुमान विवरण में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

(वट-मल में, हाथ जोड कर व्याकुल हृदय से सीता ने प्रार्थना की)
अपनी परोपकारी वृति के कारण चतुर्दश लोक में तुम्हारी ख्याति हैं।
मेरी सास और मेरे श्वसुर, अयोध्या में मगल से रहें,
शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत वीर सुखपूर्वक राज्य पालन करते रहें।
अयोध्या निवासी सभी नर नारी आनन्द पूर्वक रहें,
मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हू, शत्रुओ का उपद्रव उनको न हो।
मैं विधवा और गर्णिता न होऊ और युग युग तक जीवित रहू ।।
मेरे पिता परम पद की प्राप्ति करें, इससे अधिक और तुमसे क्या मागू।।
विचित्र रामायण।

६ पुरुषार्थ शून्यानां गुणनां प्रति प्रसव "
कैवल्य स्वरूप प्रतिष्ठा वाचित शक्ति हन

का विधान नही है। केवल शोक रहित होने के उद्देश्य से उस दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें आठ अशोक कलिकाओ के साथ जल का पान करने की विधि है। इसलिए इसे ऋषभदेव के जन्म दिन के रूप मे स्वीकार करने पर जैन सम्मत रथयात्रा से सगति बैठती है।[७]

श्री जगन्नाथ जी की स्नान यात्रा की तरह जैन प्रतिमाओं का अभिषेक स्नान या स्नान यात्रा भी अनुष्ठित होती है। छत्र, चमर, सिधा, वाद्यो के साथ अष्ठ कुंभो के द्वारा जैन देवताओ का अभिषेक होता है। विशेषत· "जिन" प्रतिमाओ की आखो को तूलिका से पुन रगने की जो विधि जैन शास्त्रो मे मिलती है, वह जगन्नाथादि मूर्तियो को स्नान कराने के उपरात उनको फिर से रगने की प्रथा उर्युक्त जैन शास्त्रो की बातो का स्मरण दिला देता है। इसी समय चक्षु का नवीकरण भी होता है, जगन्नाथ जी की गोलाकृति आखो को छोड शेष कुछ रगने के लिए रह नही जाता, उनकी मूर्त्ति ही चक्षु प्रधान है। जैन अभिधान राजेन्द्र से मालूम होता है कि जगन्नाथ शब्द मूलतः जैन है और यह जिनेश्वर (आदिनाथ ऋषभदेव) का नामातर मात्र है।[८] जगन्नाथ जी की

७ भुवनेश्वर में लिगराज की चलती प्रतिमा चद्रशेखर को अशोकाष्टमी के दिन एक रथ पर बैठा कर एक मील दूरवर्ती रामेश्वर मदिर तक ले जाकर कुछ दिनो तक वहा रखने के पश्चात पुन मुख्य मदिर में उन्हें लौटाया जाता है। यह रथ एक चक्का वाला होता हैं और उसे रुक्मिणी रथ के नाम से पुकारा जाता है। जिस ओर यह रथ जाता है उस ओर से फिर उसका मुख घुमता नही है - बाहुडा - लौटने के दिन मुख भाग की सात कज्जओ को पीछे की ओर सज्जित कर शिव जी को लौटाया जाता है।

८ अभिधान राजेन्द्र चतुर्थ खड १३८५

रथयात्रा ऋषभदेव के रथोत्सव से मिलती-सी है, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। उल्लेखनीय है कि यह रथयात्रा श्रीकृष्ण जी की घोषयात्रा नहीं है। घोषयात्रा में फिर बाहुडा (लौटना) नही होता है।

कल्पवृक्ष की साम्यता के बारे में भी पहले कहा जा चुका है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि श्री जगन्नाथ जी का नीलचक्र श्री ऋषभदेव के धर्मचक्र का ही सकेत स्वरूप है। ऋषभदेव की पूजा जहा कही भी होती है उसे चक्रक्षेत्र कहा जाता है। आबू पहाड के क्षेत्र को इसीलिए चक्रक्षेत्र के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ तक कि केंदूझर जिला स्थित आनन्दपुर सबडिविजन के जिस स्थान में पहले ऋषभदेव का पूजापीठ था उस स्थान को भी चक्रक्षेत्र के नाम से पुकारा जाता है। पुरी को चक्रक्षेत्र के नाम से पुकारने मे वैष्णव धर्म का प्रभाव जहा तक भी हो, पर जैन ऋषभदेव के पूजापीठ होने के कारण ही पुरी का एसा नाम पडा इस में सदेह नही है। इन सारे प्रमाणो पर गभीरता पूर्वक चितन करने पर श्री जगन्नाथ जी को आनुष्ठानिक रूप से जैन प्रतिमा ही मानना पडेगा।[१]

---

[१] नवभारत मार्च, १६५१ को अक देखे।

१. उड़ीसा की जैन-कला

भुवनेश्वर से दक्षिण-पश्चिम दिशामें खण्डगिरि और उदयगिरि नामक दो छोटे-छोटे पहाड हैं। उनकी ऊँचाई क्रमश १२३ फीट और ११०फीट है। उदयगिरिके नीचे एक वैष्णव मठ भी है। ये पहाड छोटी-छोटी गुफाओ से परिपूर्ण हैं। उदयगिरि व खण्डगिरिमे १६ तथा उनके निकटमें ही नीलगिरि नामक पहाड में ३ गुफायें देखनेको मिलती हैं। २० वी शताब्दीने प्राय १६ सौ वर्षो पूर्व ही अधिकाश गुफायें जैन सम्राट् खारवेल और उनके परिवार वालों के द्वारा निर्मित की गई थी। शैवधर्मका केन्द्र स्थान भुवनेश्वर इसके इतने निकट है कि जैनधर्म किस प्रकार अपने स्थानमें जम सका, इस प्रश्न का लोगो के मनमें उठना स्वाभाविक ही है। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में शैवधर्म खूब सम्भव हैं कि कलिग में नही फैला हो तथा ऐसा मालूम पडता है कि जैनधर्म की वृद्धिमें रुकावट डालनेके लिये ब्राह्मण धर्मके परिपोषक वर्गने भुवनेश्वर को अन्तमें प्रचारके उपयुक्त स्थान समझकर ग्रहण किया हो।

खण्डगिरि और उदयगिरि आदिमें स्थित गुफाओका स्थापत्य दक्षिण भारतमें वास्तव में एक दर्शनीय वस्तु है। इसीके कारण प्रतिवर्ष भारतसे सैकडो ऐतिहासिक विद्वानो तथा पर्य्यटको का यह आकर्षण केन्द्र रहा है। उदयगिरि की गुफाओ के मध्यमें रानी हसपुर नामक गुफा ही सबसे बडी है। इसकी बनावट भी बडी सुन्दर है। इसको रानी गुफा भी कहा जाता

वास्तविक जीवित-जागृत प्रतिमा सी मालूम पड़ती है।

नीचे के मजलेमें मूर्तियां इतनी उच्चकोटि की नहीं है उनमें अप्राकृतिकता और अनभिज्ञता पूर्ण मात्रामें मालूम पड़ती है। किन्तु रानी गुफामें स्थापित मूर्तियों से वे अवश्य प्राचीन हैं; किन्तु स्थान विशेष के कारण इसमें कहीं खूब उच्च कोटि के स्थापत्य भी देखने को मिलते हैं इसलिए नीचे की मजले की कला ऊपर मजले की अपेक्षा अधिक पुरानी है। इसमें भूल नहीं है। रानी गुफाके दूसरे मजले में स्थित मूर्तियों की कलामें हम जो पार्थक्य देखते हैं, वह पार्थक्य समय की दूरताके लिये नहीं मालूम पड़ता है बल्कि भिन्न२ शिल्पकारों की नियुक्तिके द्वारा इस पार्थक्य (असमानता) की सृष्टि हुई है। नीचे के मजलेके लिये जो शिल्पकार नियुक्त किये गये थे, वे मालूम पड़ता है। कुछ निकृष्ट श्रेणी के थे। इस विषय पर आवश्यक प्रत्यक्ष प्रमाण मिलना सहज नहीं।

इस विषयमें सर जोन मार्शलका कहना है कि ठीक मञ्चपुरी गुफाके समान नीचे का मजला और ऊपर का मजला निर्माण करते समय का व्यवधान बहुत थोड़ा था, ऐसा मालूम पड़ता है कि गुफाकी कला तथा इसकी स्थापना के ऊपर अवश्य ही मध्य भारतीय तथा पश्चिम भारतीयों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रभावके द्योतक हम जीवित दो प्रमाण पाते हैं। ऊपर के मजलेमें स्थित एक द्वार रक्षक, जो ग्रीक है अथवा वह यवन वेषभूषा से सुसज्जित हुआ है।

उसीके निकटमें एक सिंह तथा उसके आरोही की गठन में भी पश्चिम एशिया के कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु नीचे के मजलेमें स्थित प्रहरी का रूप तथा परिपाटी से अविकल भारतीय ढंग मालूम पड़ता है, कारण यहां शिल्पकी निपुणता अपरिपक्व है। वह भारतीय नियमानुसार सीमाबद्ध है।

अर्द्धवृत्त में शेष मञ्चपुरी और स्वर्गपुरी या वैकुण्ठपुरी नामकी दो गुफाएं है। इनगुफाओं में जो शिलालेख है, उसका ऐतिहासिक मूल्य अपरिमेय है, कारण चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा के शिलालेख के साथ उनका सम्पर्क है।

मञ्चपुरी गुफा के सम्मुख एक विस्तृत प्रागण है। उसी के पास में बरामदा तथा दक्षिण पार्श्व में स्थित बरामदे में दो-दो मूर्तिया है। प्रधान बरन्डे की छत के सम्मुख नाना प्रकार की मूर्त्तिया खोदी गई है। वे सब वर्त्तमान अस्पष्ट हो गई हैं। प्रकोष्ठ के मध्य में जाने के लिये जो पाच द्वार निर्दिष्ट है उन्हीं द्वारो तथा पार्श्व स्तभो में वृक्ष, लता, पुष्प आदि का चित्रण अति सुन्दर रूप में अकित है।

इन शिलालेखो से मालूम पडता है कि सब गुफाऍं महामेघवाहन कदम वा कुजप के द्वारा निर्मित हुई थी। ये निश्चय ही खारवेल के वशधर होगे।

फर्गुसन ने इस गुफा को पातालपुरी नाम दिया है। मञ्चपुरी या पातालपुरी के पश्चात् स्थित पहाड में स्वर्गपुरी गुफा बनी है। मित्र और फर्गुसन के अनुयायी इनको वैकुण्ठपुरी भी कहते है। इसके विराट प्रकोष्ठ के पास एक बरामदा है। दक्षिण पार्श्व में एक छोटा प्रकोष्ठ है। बरामदे की छत अनेकाश में टूट गई है। इसलिये स्तभ या प्रहरी की मूर्त्ति आदि थी, यह नष्ट हो गई है। उसमें स्थित शिलालेख से मालूम पडता है कि कलिंग के जैन-सन्यासी तथा अर्हत के लिये राजा ललाक की दुहिता हाथी साहस की पौत्री के द्वारा निर्मित हुई थी। यह थी खारवेल की प्रधान रानी।

गणेश-गुफा के भीतर की दिवाल पर गणेश जी की प्रतिमूर्त्ति खोदी हुई है। इस गुफा में दो प्रकोष्ठ और एक बरामदा है। गुफा में प्रवेश करने के दोनो पार्श्व में दो हाथियो की

गुफा, हाथी गुफा, वाघ गुफा और जम्वेश्वर गुफा विद्यमान है। पहाड के पृष्ठ भाग को काटकर समतल किया गया है। समतल स्थान के केन्द्र स्थल में एक क्षुद्र मडप है। इस मडप में अनेक समय से छोटे २ मन्दिरो का भग्नावशेष भी मालूम पडता है। थान घर की गुफा १४½ फीट लम्वी और उसके लिये तीन प्रवेश द्वार है। वरामदेमें वैठनेके लिए वदोवस्त किया गया है। वाम पार्श्व में स्थित स्तभ के शरीर में सैनिको की मूर्त्ति खोदी हुई है। सैनिक के मस्तक पर एक हाथी की मूर्त्ति भी दिखाई पडती है।

हाथी गुफा का गठन अति असाधारण है। इसमें कोई निर्दिष्ट आकार नही है। हाथी के ४ प्रकोष्ठ और स्वतत्र वरामदा भी था। गुफा का अन्तर्देश ५२ फोट लम्वा और २८ फीट चौडा है। द्वार को ऊँचाई ११½ फीट है। इसमे खारवेल का विश्व विख्यात शिलालेख है। इसशिलालेख में उनका जीवन चरित्र लिपिवद्ध हुआ है। समय २ पर यह शिलालेख असम्पूर्ण के समान वोध होता है।

हाथी गुफा के पश्चिम में ८ गुफाएँ है। इसके ठीक ऊपर पार्श्व मे सर्प गुफा अवस्थित है। यह गुफा सर्प के फण के समान दीखतो है। सर्पफण जैन तोर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रतीक हैं। यह गुफा वहुत छोटी है। इसकी ऊँचाई केवल ३ फीट है। यहा पर दो शिलालेख है। वे बिना भूल हुए पढ़ना सभव नही, क्योकि अनेक अक्षर नष्ट हो गये है। सर्पगुफा के उत्तर पश्चिम की ओर व्याघ्र गुफा है। इसका अग्रभाग शार्दूल की मुखाकृति के समान दिखाई पडता है। व्याघ्र गुफा केवल ३१ फीट ऊँची है तथा द्वार में स्थित शिला लिपि के द्वारा मालूम पडता हैं कि वह गुफा जैन ऋषि सुभूति की थी।

जम्वेश्वर गुफाकी ऊँचाई केवल ३ फीट ८ इ च हैं। इस

अलकापुरी या स्वर्गपुरी गुफा
(खण्डगिरि उदयगिरि)

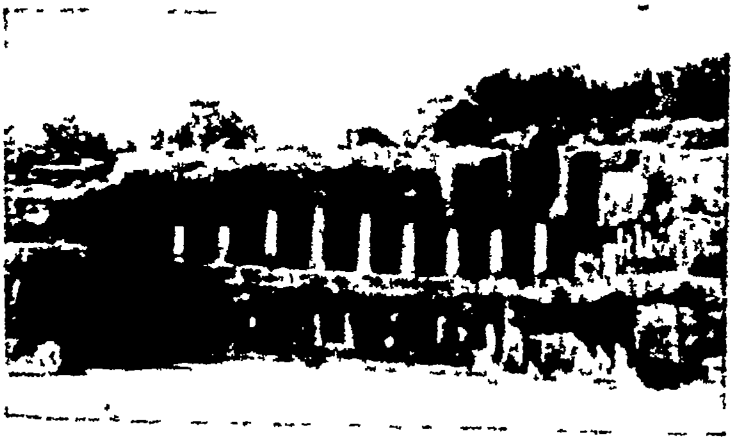

खण्डगिरि में रानीहंसपुर गुफा

गणेश गुफा
(खण्डगिरि उदयगिरि)

ऊपर की मन्जिल में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान

ा में उत्कीर्ण दृश्य।

में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान

उत्कीर्ण जैन उपाख्यान के दृश्य।

नीचे की मंजिल में एक दरबान की मूर्ति

ऊपरी मन्जिल में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान

छोटी हाथी गुफा खण्डगिरि उदयगिरि

मञ्चपुरी या स्वर्गपुरी गुफा
(खण्डगिरि उदयगिरि)

बरामदे में दक्षिण पार्श्व पर नागी दरबान

खडगिरि उदयगिरि पर्वत पर उत्कीर्ण तीर्थंकर मूर्तियाँ

श्री जैन मठ कटक में विराजमान तीर्थंकर मूर्तियाँ।

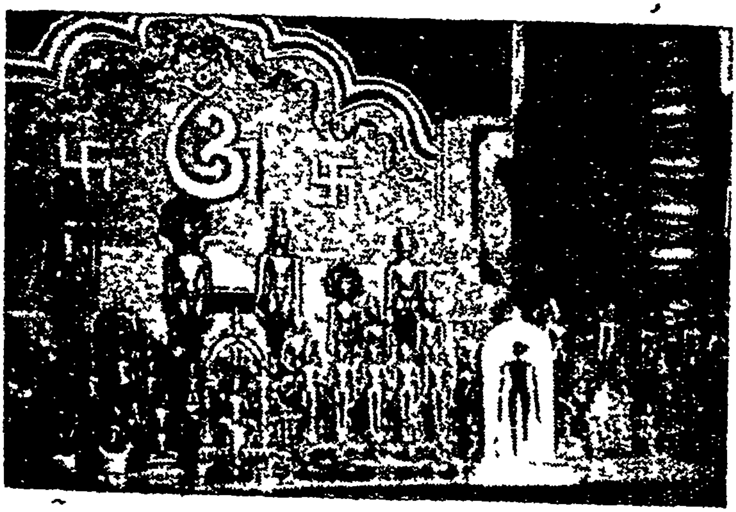

धातु की जिनमूर्तियाँ
(कटक के जैन मठ मे स्थित)

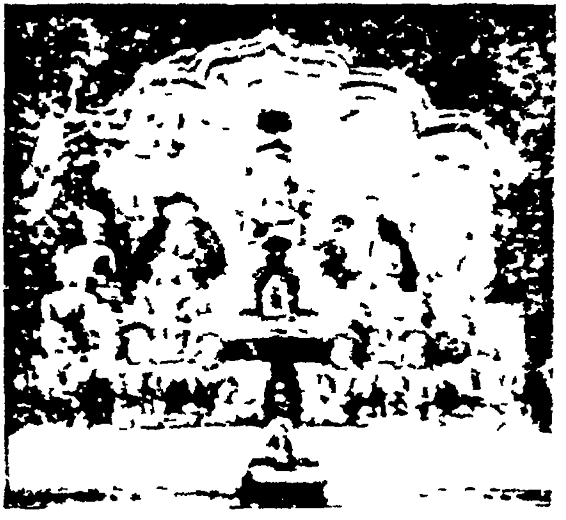

भ० पार्श्वनाथ की मूर्ति

(कटक के जैन मदिर में स्थित)

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर की मूर्तियाँ
(दि० जैन मदिर कटक)

श्री स्वप्नेश्वर शिवमन्दिर में
भ० ऋषभदेव की मूर्ति

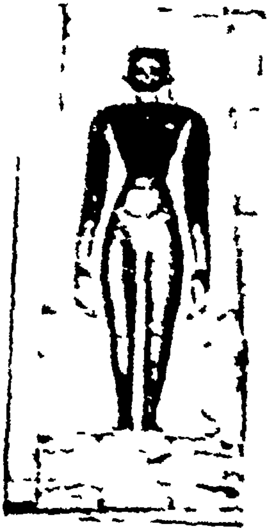

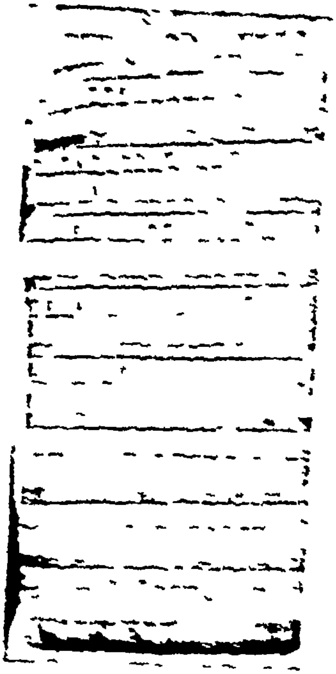

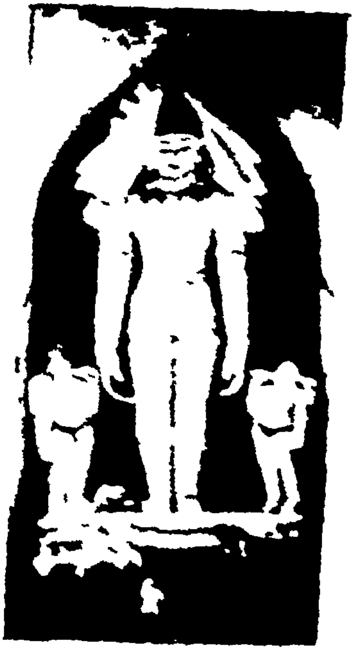

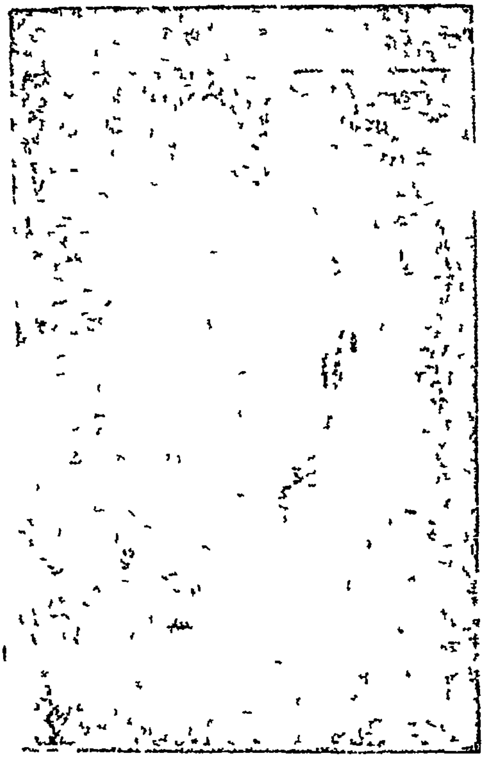

भ० पार्श्वनाथ की मूर्ति
(अयोध्या—नीलगिरि जिला बालासोर)

भ० शान्तिनाथ की मूर्ति
(भुवनेश्वर म्यूजियम)

तीर्थंकर एवं शासनदेवी की मूर्तियाँ।
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर से प्राप्त)

भ० पार्श्वनाथ की मूर्ति
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर से)

भ० ऋषभ की मूर्ति
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर से प्राप्त)

अतस पुर से उपलब्ध जैन मूर्ति

भ० ऋषभ, भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर की पाषाण मूर्तियाँ।

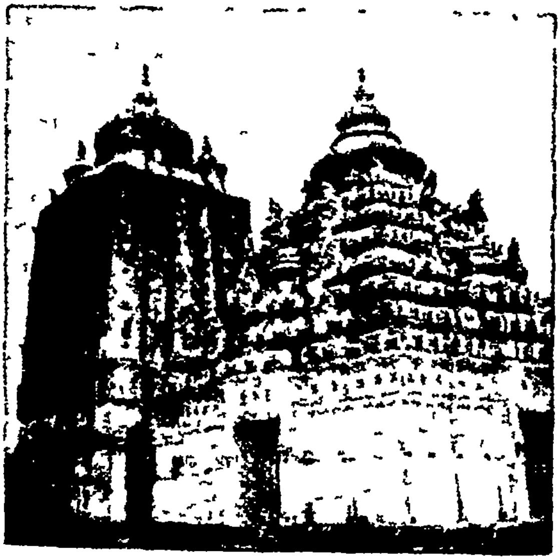

कटक का प्राचीन दि० जैन मंदिर

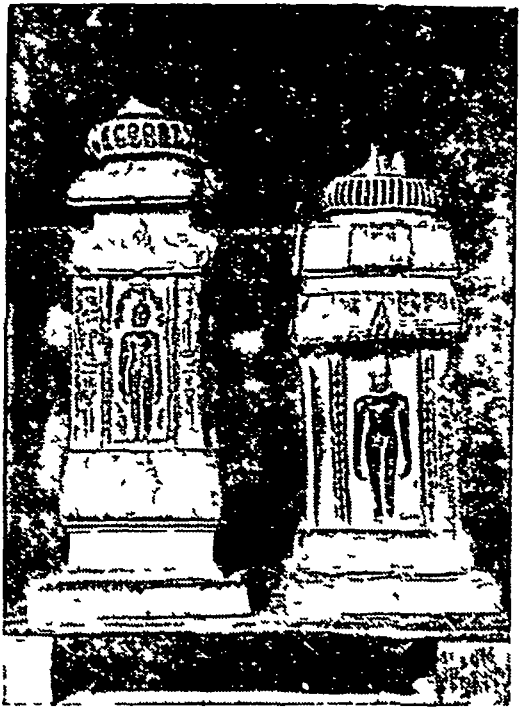

कटक के प्राचीन दि० जैन मंदिर में विराजमान
तीर्थङ्कर भ० के चैत्य ।

गुफामें जानेके लिये दो द्वार हैं। द्वारके ऊपर ब्राह्मीलिपि का शिलालेख है। उससे मालूम पडता है कि यह महा मयर और उनकी स्त्रीके लिये निर्मित की गई थी।

वाघ्र गुफासे कुछ दूर तथा उदयगिरि की ५० फीट ऊँची जो तीन गुफाएँ,वे सब हरिदास गुफा है। वे जगन्नाथ गुफा और रोशई गुफाके नामसे पुकारी जाती है। हरिदास गुफामें केवल एक प्रकोष्ठ है, जो प्रायः १० फीट लम्बा है किन्तु इसमे तीन प्रवेश द्वार है। इसमें खुदी हुई लिपिसे मालूम पडता है कि यह कोठाजय के क्षुद्र कर्मके लिये बनाई गई थी। जगन्नाथ गुफा के भीतर जगन्नाथ जी की मूर्ति अकित होने के कारण उसके नामानुसार उसका नाम करण हुआ है। इसके विस्तीर्ण प्रकोष्ठ के पास बरामदा और तीन द्वार है। द्वारमें कोई भी चित्र अकित नही है। यह अति सुन्दर और अनाडम्बर है। इसके पार्श्वमें स्थित गुफाको रोषई गुफा कहा जाता है। इसमें केवल एक प्रवेश द्वार है। खण्डगिरिकी गुफाका वर्णन उत्तरकी तरफसे शुरू होता है। उत्तर में तोतागुफा है। गुफाके एक स्थान पर तोता पक्षीका चित्र खोदे जानेके कारण उसका नाम तोता गुफा पडा है। इसका प्रकोष्ट १६ फीट ४ इन्च लम्बा और ५ फीट ९ इन्च ऊचा है। प्रवेश करने के लिये ३ द्वार है। दीवारमें एक शिला-लेख खुदा हुआ है। इसके नीचे एक लिपि पाच लाइनोमें लिखी हुई है। तोताके ६फीट नीचेजो गुफा है,जो उसमें भी तोता पक्षी का चित्र है। इसलिए इसको भी तोता गुफा कहतेहैं। बरामदे के दोनो ओर सैनिको की प्रतिमूर्ति है। प्रकोष्ट १० फाट८इ० लम्बा और ४फी० ४इ०चौडा है। इसलिए इसमें दो प्रवेशद्वार हैं। इन द्वारोमें जो शिलालेख हैं, उनसे जाहिर होता है कि इस गुफामें कुसुम नामका एक सेवक रहता था।

(२) तोताके पूर्व भागमें खण्डगिरि गुफा है। उसके नीचे

से ऊपर जाने पर पहले खण्डगिरि गुफामें प्रवेश करना पड़ता है। गुफाकी निचली मजिलमें जो प्रकोष्ट है, उसकी ऊँचाई ६ फीट २ इन्च है। और ऊपरी मजिल की ऊचाई ४ फीट८ इन्च हैं। इसके अलावा नीचे की मजिल में एक छोटी टूटी-फूटी गुफा है। ऊपरी मजिलके प्रकोष्ट के निकट में एक छोटी कोठरी मालूम पडती है। उस छोटी गुफा में पतित-पावन की मूर्ति अंकित है। खण्डगिरि गुफाके दक्षिण तरफ घानगढ नामक एक दूसरी गुफा है। उस गुफामें स्थित शिलालेख आजतक भी पढ़ा नही गया है। यह आठवी या नवी शताब्दीमें लिखा गया है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके दक्षिण दिशा की ओर नवमुनि गुफा, बारभुजि गुफा और त्रिशूल गुफा है। नवमुनि गुफामें दो प्रकोष्ठ हैं। इस गुफामें १० वी शताब्दी का एक शिलालेख है। इसमें जैनमुनि शुभचन्द्र का नाम उल्लेख किया है। गुफाके दक्षिण पार्श्वमें स्थित जैनियोके २४ वें तीर्थंकरकी मूर्ति खोदी गई है। यही नवमुनि गुफाकी विशेपता है।

जैनधर्म मे हम लोग साधारणत २४वें तीर्थंकर का सधान पाते है। उनकोही नवमुनिगुफामे रूपदान किया गया है। सवो की एतिहासिक स्थिति तथा प्रमाण पाना सभव नही हैं। उन को जोवनो अनेक समय से कल्पनिक और रहस्य जनक है। यह बात हमें जैनशास्त्र से प्रतीत होती है। बहुत दिनो तक जीवित रहकर ये तीर्थंकर जैनधर्मकी अहिसा वाणी का प्रचार किये थे। इन्ही २४ सो के जीवन काल की घटना को एकत्रित करने पर भारत का प्राचीन ऐतिहासिक काल ऐतिहासिक युग से भी आगे बढ जायगा। इसलिये कितने तीर्थंकर समसामयिक थे ऐसे कितनो का विचार है, पर वह ठीक नही है।

जैनधर्म मे ये तीर्थंकर सदा पूजनीय है। जैन तीर्थ स्थानो में जो २४ तीर्थंकरो की स्थापना हुई है उनको एक प्रकार

सम्मान प्रदर्शन करने के लिए, किन्तु मन्दिर में उनके बीचमें एक मूलनायकके नामसे स्वीकार किया जाता है। अन्य जैनयों के द्वारा वही मूलनायक परिवेष्ठित होकर मुख्य पूजा पाते हैं। वे ही मूलनायक कहकर मन्दिर में प्रधान देवता कहे जाते थे। मंदिर में जिनेन्द्र की उच्चासना ही जैनधर्म का परम्परागत न्याय है। नवमुनि गुफा मे पार्श्वनाथ को मूलनायक के रूप में पूजा की जाती है। यह २४ जैन तीर्थंकरो के सातसिक बिकार और इन्द्रियोको जय करनेसे ही जैन धर्मावलम्वियोका नमस्य हुआ है। जैन लोगोने सन्यासी व्रतको शांतिमय जीवनका प्रधान पथ समझकर ग्रहण किया था। जैन तीर्थंकर पद्मासन या कार्योत्सर्ग मुद्रा में स्थित होकर शिव की मूर्त्ति के समान दिखाई देते हैं। यह सादृश्य अर्थहीन नही है। किन्तु यही सादृश्य को केन्द्र कर हम कह सकते है कि जैनियो के यौगिक आलम्बनको अवलम्व करके शिव की प्रतिमूर्त्ति गठित हुई है।

यह इन्ही जैनतीर्थंकरो के भिन्न२ चिन्ह हैं। प्रत्येकका यक्ष और यक्षिणी या शाशन देवता और ज्ञान प्राप्त वृक्ष भी भिन्न भिन्न हैं। कितने हो जिनेन्द्र उनके वश के प्रतीक को चिन्ह के रूप में ग्रहण करने मे अनूमित होते हैं। दृष्टान्त स्वरूप इक्ष्वाकु वश ऋषभ के प्रतीक रूप म व्यवहार करते थ।

ऋषभनाथके इसीवश में जन्मलेने के कारण वृषभ उनका चिन्ह हुआ है। उसी प्रकार मुनिसुव्रत और नेमिनाथ का चिन्ह क्रमश कूर्म और शख है।

प्रथम तीर्थंकर और आदि जिन ऋषभनाथ के सबध में किम्बदन्तियाँ और आख्यायिकायें हैं जो उनमें सत्यासत्य जानने का उपाय नही है। जैनियो के इतिहासम भी इन्ही ऋषभनाथ या वृषभनाथको ही जैनधमका १ स्थापक मानते हैं ऐसा वर्णनकिया जाता है। दिगम्बरो का आदि पुराण और हेमचन्द्र

पोह् सुदी ४ निर्वाण चैत्रसुदी ५

३ तीर्थङ्कर-सभवनाथ, जन्मस्थान-श्रावस्ती, पिता-जितारी, माता-सेनमाता, बिमान-ग्रैवेयक, वर्ण-स्वर्णभ केवलवृक्ष-प्रयाल, लाछन-अश्व, यक्ष-त्रिमुख, यक्षी-दुरिताि (श्वे०) प्रज्ञप्ति (दि०) चउरीधारक-सत्येवीर्य, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखिर गर्भ फा० सुदी ८ जन्म कार्तिक सुदी १५, तप मगसर सुदी १५ केवल ज्ञान कार्तिक वदी ४ निर्वाण चै० सुदी ६

४ तीर्थङ्कर-अभिनन्दननाथ, जन्मस्थान-अयोध्या, पिता-सम्वर राज, माता सिद्धर्थी, विमान-जयंत वर्ण-स्वणी, केवल वृक्ष-प्रियगु लाछन-कपि, यक्ष-नायक (श्वे०) यक्षेश्वर, (दि०) यक्षी कालिका (श्वे०) वज्रशुखला (दि०) चउ रिघारक, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखिर गर्भ वैसाख सुदी ६ जन्म व तप माघ सुदी १२ केवल ज्ञान पोह् सुदी १४ वैसाख सुदी ६

५ तीर्थङ्कर-सुमतिनाथ, जन्म स्थान-अयोध्या, पिता-मेघराज माता-मगला, विमान-जयत वर्ण-स्वर्णाभ, केवल वृक्ष-शाल लाछन-क्रौन्च, यक्ष-तुंवरु, यक्षी-महाकाली (श्वे०) पुरुपदत्त (दि) चउ रीधारक मित्रवीर्य गर्भ श्रावण सुदी २ जन्म व तप चैत्र सुदी ११ केवल ज्ञान चैत्र सुदी ११ निर्वाण चैत्र सु० ११

६ तीर्थंकर-पद्मप्रभ, जन्मस्थान-कौशम्बि, पिता वर्ताधर, माता-सुमीमा, विमान-उवरिमग्रैवेयक, वर्ण-रक्ताभ, केवलबृक्ष-छत्राभ, लाछन-रक्तकमल, यक्ष-कुसुम, यक्षी-अच्युता (श्वे०) श्यामा (श्वे०) मनोवेगा (दि०), चवरिधारक यमद्युति: निर्वाण स्थान सम्मेद शिखिर गर्भ माघ वदी ६ जन्म व तप कार्तिक सुदी १३ केवल ज्ञान चैत्र सुदी १५ निर्वाण फागुन वदी ४

७ तीर्थंकर-सुपार्श्वनाथ, जन्मस्थान-वाराणसी पिता-प्रतिष्ठा-राज, माता-पृथ्वी, विमाज-मध्यग्रैवेयक, वर्ण-स्वणाभ, केवल-वृक्ष-शिरीप, लाछन-स्वस्तिक यक्ष-मातग (श्वे०) वीरनन्दी

(दि०) चवंरीधारक-त्रिपिष्टराज, नि० स्थल स० शि० गर्भ जेठ वदी ८, जन्म व तप फा० वदी ११, केवल ज्ञान माघ वदी १५ निर्वाण श्रावण सुदी १५

१२ तीर्थंकर-वासुपूज्य, जन्मस्थान-चम्पापुरी, पिता-वसुपूज्य माता-जया, विमान-प्रणत देवलोक, वर्ण-रक्ताभ, केवलवृक्ष-पाटलिक व कदम्ब, लाछन-महिषी, यक्ष-कुमार, यक्षी-प्रचण्ड (श्वे०) चण्ड (श्वे०), गान्धारी (दि०), चवरीधारक-द्विपिष्ट वासुदेव, नि० स्थान मन्दारगिरि गर्भ अषाढ वदी ६ जन्म व तप फा० वदी १४ केवलज्ञान भादो वदी २ निर्वाण भादो सुदी १४

१३ तीर्थंकर विमलनाथ, जन्मस्थान-काम्पिल्यपुर (फरखावाद) पिता-कृतवर्मराज, माता-श्यामा, विमान-महाशर देवलोक, वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष-जम्बु, लाछन-वराह, यक्ष-सम्मुख (श्वे०) श्वेतम् (दि०), यक्षी-विजया (श्वे०), विदिता (श्वे०) वैरोति (दि०) चवरीधारक-स्वयम्‌ वासुदेव, नि० स्थान स० शि० गर्भ जेठ वदी १० जन्म व तप माघ सुदी १४ केवल ज्ञान माघ सुदी ६ निर्वाण आषाढ वदी ६

१४ ती. अनतजित अथवा अनन्तनाथ जन्मस्थान अयोध्या, पिता-सिंहसेन, माता सुयशा, विमान-प्रणत देवलोक, वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष-अशोक या अश्वत्थ, लाछन-श्वेन (श्वे०) भल्लुक (दि०), यक्ष-पाताल, यक्षी-अंकुशा (श्वे०), अनन्तमति (दि०), चवरीधारक-पुरुषोत्तम वासुदेव, नि० स्थान स० शि० गर्भ कार्तिक वदी १ जन्म व तप जेठ वदी १२ केवल ज्ञान चैत्र वदी १५ निर्वाण चैत्र वदी ४

१५ तीर्थंकर-धर्मनाथ, जन्मस्थान-रत्नपुरी, पिता-भानुराज, माता-सुव्रता, विमान-विजय, वर्ण स्वर्णाभ, केवलवृक्ष दधिपति या सप्तच्छद, लाँछन-वज्रदड, यक्ष-किन्नर, यक्षी-पन्नगा देवी (श्वे०), कन्दर्पी (श्वे०), मानसी (दि०), चवरीधारक-

चऊँरीधारक—सुलुमराज, नि० स्थान स० शि० गर्भ चैत्र सुदी १ जन्म व तप मगसर सुदी ११ केवल ज्ञान पोह वदी २ निर्वाण फागुन सुदी ५

२० तीर्थंकर मुनिसुव्रत, जन्मस्थान—राजगृह, पिता—सुमतिराज; मात—पद्मावती, विमान—अपराजित देव लोक, वर्ण—कृष्णाभ, केवलवृक्ष—चम्पक, लाछन—कूर्म, यक्ष—वरुण, यक्षो—नरदत्ता (श्वे०) वाहुलीपाणि (दि०), चउँरीधारक—अजित नि० स्थान स० शि० गर्भ श्रावण वदी २ जन्म व तप वैसाख वदी १० केवल ज्ञान वैसाख वदी ६ निर्वाण फागुन वदी १२

२१ तीर्थंकर—नमिनाथ; जन्म स्थान— मिथिला पिता— विजय राज, माता—विप्राराणी, विमान—प्रणत देवलोक, वर्ण—पीताभ, केवलवृक्ष—वकुल, लाछन—नीलोत्पल, (श्वे०) अशोकवृक्ष (दि०) यक्ष—भृकुटि (श्वे० नंदिण (दि०), यक्षी—गाधारि (श्वे०) चामुडी (दि०) चउँरीधारक (विजय राज) नि० स्थान स० शि० गर्भ आसोज वदी २ जन्म व तप आषाढ वदी १० केवल ज्ञान मगसिर सुदी ११ निर्वाण वैसाख वदी १४

२२ तीर्थंकर—नेमीनाथ, जन्मस्थान—सौरीपुर वा द्वारका, पिता—समुद्रविजय, माता—शिवादेवी, विमान—अपराजिता, वर्ण—कृष्णाभ, केवल वृक्ष—महावेणु वेतसा, लाछन-शख, यक्ष-गोमेध (श्वे०) सर्वाह्ण—(दि०) पुष्पयान दि०) यक्षी-अमा, अम्बिका—कुष्माणिडनी, चउँरीधारक उग्रसेन, नि० स्थान गिरिनार (रैवतक, गर्भ कार्तिक सुदी ६ जन्म व तप श्रावण सुदी ६ केवल ज्ञान आसोज सुदी १ आषाढ सुदी ८

२३ तीर्थंकर—पार्श्वनाथ, जन्मस्थान—वाराणसी, पिता

अश्वसेन राजा, माता-वामादेवी,, विमान प्रणत देवलोक। वर्ण—नीलाभ, केवलवृक्ष—देवदारु या घातकी, लाछन—सर्प, यक्ष—पार्श्व (श्वे०) वा धरजेन्द्र (दि०) यक्षी—पद्मावती, चउँरीधारक—अजितराज, नि० स्थान स० शिखिर ' गर्भ वैसाख वदी २ जन्म व तप पो० वदी ११ केवल ज्ञान चैत्र वदी ४ श्रावण सुदी ७

२४ तीर्थंकर—महावीर वा बर्धमान, जन्मस्थान—कुडग्राम पिता—सिद्धार्थराज या श्रेयास वा यशस्वी, माता—त्रिशला, विदेहदत्ता वा प्रियकारिणी, विमान—प्रणत देवलोक, वर्ण—पीताभ, केवलवृक्ष—शाल, लाँछन—सिंह, यक्ष—मातग, यक्षी—सिद्धयिका, चउँरीधारक—श्रेणिक या बिम्बसार नि० स्थान पावापुर गर्भ अषाढ सुदी ६ जन्म व तप चैत्र सुदी १३ केवल ज्ञान मगसिर वदी १० वैसाख सुदी १० निर्वाण कार्तिक वदी १५

२४ यक्ष या शासन देवताओं का विशद वर्णन

(जैनधर्म के अभ्युत्थान के साथ२ भारतियो का लोकविश्वास और साहित्यिक परपरामें यक्ष लोगो का एक गोष्टीगत भावमें यहा अस्तित्व था। जैन विश्वासके मुताविक इन्द्रदेव चौवीस तीर्थंकरो की सेवा के लिये २४ यक्षो को शासन देवता के स्वरूप नियुक्त करते हैं। प्रत्येक तीर्थंकरके दाहिने पार्श्व में यक्षमूर्ति की प्रतिष्ठाकी जाती है)

१ यक्ष (शासन देवता)-गोमुख, श्वेताम्बर सकेत-वरदामुद्रा जयमाला और कुठार दिगम्बर सकेत-मस्तकपर धर्मचक्र का प्रतिरूप, वाहन-वृक्ष (श्वे०), गज (दि०), तीर्थंकर—ऋषभदेव या आदिनाथ,

२ यक्ष (शासन देवता)—महाक्ष, श्वेताम्बर सकेत-चतुर्मुख और अष्टबाहु, वरदा, गदा, जयमाला, पाश, निबु, अभय, अकुश,

शक्ति, दिगम्बर सकेत-चतुर्मुख और अष्टवाहु, थालिआ, त्रिशुल, वाहन पद्म, अंकुश, खडग, यष्टि, कुठार वरदा, मुद्रा, गज, तीर्थंकर—अजितनाथ,

३ यक्ष (शासन देवता) त्रिमुख, श्वे० संकेत षडवाहु, नकुल गदा, अभय मुद्रा, निबू, पुष्पहार और जयमाला, दिगम्बर संकेत-त्रिमुख, षड्वाहु, थलिया अंकुश, यष्टि; त्रिशुल, और क्षुद्र खडग, वाहन-मयूर, तीर्थंकर-संभवनाथ,

४ यक्ष (शासन देवता) यक्षेश्वर (दि०) नायक (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-निबु, जयमाला, नकुल और अकुश दिगम्बर सकेत-खड, धनुष ढाल और खडग, वाहन-गज, तीर्थङ्कर-अभिनदननाथ,

५ यक्ष (शासन देवता) तुम्बरु श्वेताम्बर सकेत-वरदा, वर्च्छी, गदा और पाश, दिगम्बर सकेत-दो सांप, फल और वरदा मुद्रा वाहन-गरुड, तीर्थंकर-सुमतिनाथ

६ यक्ष- (शासन देवता) -कुसुम (श्वे०) पुष्पयक्ष (दि०) श्वेताम्बर सकेत-चतुर्वाहु, फल, अभय मुद्रा, जयमाला और नकुल, दिगम्बर सकेत-चतुर्वाहु, वरदा मुद्रा-ढाल अभय मुद्रा- वर्च्छी, वाहन-कुठजसार, तीर्थंकर-पद्मप्रभ,

७ यक्ष (शासन देवता)- मातग (श्वे०) या वरनदी, श्वेताम्बर सकेत-विल्वफल, पाश, नेवला, और अकुश, दिगम्बर सकेत-यष्टि, वर्च्छी, स्वस्तिक और वैजयत, वाहन-गज (श्वे) सिंह (दि०) तीर्थङ्कर-सुपार्श्वनाथ,

८ यक्ष (शासन देवता)-विजय (श्वे०) या श्याम (दि०) श्वेताम्बर सकेत—त्रिनेत्र थालिआ और गदा, दिगम्बर सकेत त्रिनेत्र, फल, जयमाला, कुठार और वरमुद्रा, वाहन—हस, तीर्थङ्कर—चन्द्रप्रभ,

९ यक्ष (शासन देवता)—अजित श्वेताम्बर सकेत—निबुफल जयमाला, नेवला, और वर्च्छी, दिगम्बर सकेत—शक्ति, वरदा

मुद्रा, फल और जयमाला, वाहन कूर्म, तीर्थङ्कर-सुविधिनाथ या पुष्पदंत

१० यक्ष (शासन देवता) ब्रह्मा, श्वेताम्बर, संकेत-चतुर्मुख, त्रिनेत्र, अष्टबाहु बिजपूरक, गदा, पाश, अभय, नकुल, ऐश्वर्य सूचक, दण्ड, अंकुश, और जपमाला, दिगम्बर संकेत-चतुर्मुख त्रिनेत्र, अष्टबाहु, धनु, यष्टि, ढाल, खड्ग, और वरदा मुद्रा, वाहन पद्म तीर्थङ्कर शीतलनाथ

११ यक्ष (शासन देवता) ईश्वर (दि०) या यक्षेत (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-त्रिनेत्र, चतुर्बाहु, नेवला, जयमाला, यष्टि और फल दिगम्बर संकेत-त्रिनेत्र, चतुर्बाहु त्रिशूल, यष्टि, जयमाला और फल, वाहन वृषभ तीर्थंकर श्रेयांसनाथ,

१२ यक्ष (शासन देवता) कुमार, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्बाहु, बिजु, शर, नकुल और धनु दिगम्बर संकेत-त्रिशिर, षड्हस्त, धनु नकुल, फल, गदा और वर मुद्रा, वाहन-श्वेतहंस, तीर्थंकर-वासुपूज्य

१३ यक्ष (शासन देवता) सम्मुख (श्वे) या श्वेतम्मु (दि०) श्वेताम्बर संकेत-षडानन, द्वादशबाहु, फल, शालिग्रा शर, खड्ग पाश जयमाला, नकुल, चक्र धनुष फल, अंकुश और अभय मुद्रा, दिगम्बर संकेत-चतुर्मुख, अष्टबाहु, कुठार, चक्र, तलवार, ढाल और यष्टि आदि वाहन मयूर तीर्थंकर विमलनाथ

१४ यक्ष (शासन देवता) पाताल, श्वेताम्बर संकेत त्रिमुख, षडबाहु, पद्म, खड्ग, पाश, नकुल फल, और जयमाला, दिगम्बर संकेत-त्रिमुख, षटबाहु, अंकुश बर्छी धनु, रज्जु, लगल, फल और तिफला विशिष्ट नागरा एवं चन्द्रातप, वाहन- मुमु तीर्थंकर अनंतजिन या अनतनाथ,

१५ यक्ष (शासन देवता) किन्नर श्वेताम्बर संकेत—त्रिमुख, षडबाहु, बिजु, ऐश्वर्य सूचक, दण्ड, अभय, नकुल पद्म और

जपमाला, दिगम्बर संकेत—त्रिमुख, षड्बाहु, चालिका, वज्र
अंकुश, जपमाला और वरद मुद्रा, वाहन—कूर्म (श्वे०) मीन
(दि०) तीर्थंकर—धर्मनाथ,

१६. यक्ष (शासन देवता)—गरुड़ (श्वे०) वा, किंपुरुष (दि०) श्वेताम्बर संकेत—बिजू, पद्म, नकुल और जपमाला, दिगंबर संकेत—सर्प; पाश और धनुष, वाहन, वराह (श्वे०) गज; (दि०) तीर्थंकर—शांतिनाथ,

१७ यक्ष (शासन देवता)—गन्धर्व, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु वरद मुद्रा, पाश, बिजू, अंकुश, दिगम्बर संकेत—सर्प, पाश; और धनुष, वाहन-विहंगम, (दि०) हंस (श्वे०) तीर्थंकर कुंथनाथ

१८ यक्ष (शासन देवता)—यक्षेन्द्र (श्वे०) वा खेन्द्र (दि०) श्वेताम्बर संकेत—षडानन द्वादशबाहु, बिजू शर, खड्ग, गदा, पाश, अभय मुद्रा, नकुल, नकुल, धनु, फल, बर्छी, अंकुश और जपमाला दिगम्बर संकेत—षडानन, द्वादशबाहु, वज्र, पाश; गदा, अंकुश, वरदा मुद्रा, फल, शर और पुष्पहार, वाहन—कम्बु (दि०) मयूर (श्वे०) तीर्थंकर—अरनाथ

१९ यक्ष (शासन देवता) कुबेर, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्मुख, अष्टबाहु, वरदा, कुठार बर्छी, अभय, बिजू; शक्ति, गदा और जपमाला, दिगम्बर संकेत—चतुर्मुख, अष्टबाहु, ढाल, धनु; यष्टि, पद्म; खड्ग, चालिका, पाश और वरदा मुद्रा, वाहन गज; तीर्थंकर—मल्लिनाथ;

२०. (शासन देवता)—वरुण, श्वेताम्बर संकेत—त्रिनेत्र, अष्टशिर, जटाकुल केश, अष्टबाहु; बिजू, ऐन्द्री सूचक; शंख, शर, बर्छी, नकुल, पद्म, धनुष और कुठार, दिगम्बर संकेत—त्रिनेत्र, अष्टशिर, जटायुत केश, चतुर्बाहु, ढाल, खड्गपाश और वरदा मुद्रा, वाहन—वृषभ; तीर्थंकर-मुनिसुव्रत

२१ यक्ष (शासन देवता भृकुटी (श्वे) वा नंदिन (दि०);

मुद्रा, शंख और चक्रिका, वाहन—लोहासन (दि०) वृषभ श्वे०
यक्षी या यक्ष, अजित बाला (श्वे०) या रोहिणी [दि०]

३. यक्षी या यक्ष—संभवनाथ, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, वरदा, जपमाला, फल और अभय मुद्रा, दिगम्बर संकेत—चार बाहु, चन्द्राकृति विशिष्ट कुठार, फल, खड्ग और वरदा, मुद्रा से सुशोभित, वाहन-मेष(श्वे०) मयूर (दि०) यक्षी—दुरितारि (श्वे०) या प्रज्ञप्ति (दि०)

४. यक्षी—अभिनन्दन नाथ, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, वरदा, पाश, सर्प, और अंकुश, दिगम्बर संकेत—चतुर्बाहु, सर्प पाश, जपमाला और फल, वाहन—हंस (दि०) पद्म (श्वे०) यक्षी—कालिका (श्वे०) वज्र शृंखला (दि०)

५ यक्षी—सुमतिनाथ श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, वरदा, पाश, सर्प, और अंकुश दिगम्बर संकेत—चतुर्बाहु, पाश जपमाला और फल, वाहन—हंस (दि०) पद्म (श्वे०) यक्षी—महाकाली (श्वे०) पुरुषदत्ता (दि०)

९ यक्षी—सुबुद्धिनाथ या पुष्प दन्त श्वेताम्बर सकेत-चर्तुबाहु, वरदा, जयमाला, कुभ और अकुश दिगम्बर सकेत—चर्तुबाहु वज्र, गदा, फल और वरमुद्रा वाहन—वृषभ (श्वे०) कूर्म (दि) यक्षी—सुतारका (श्वे०) या माहाकाली (दि०)

१० यक्षी शीतलनाथ, श्वेताम्बर सकेत—वरदा, पार्श्व, फल और अकुश, दिगम्बर सकेत—फल, वरमुद्रा, धनुष आदि. वाहन-पद्म (श्वे०) सुकर (दि०) यक्षी अशोका (श्वे०) या मानवी (दि०)

११ यक्षी—शेयाशनाथ, श्वेताम्बर सकेस—वरदा गदा, कुज और अकुश, दिगम्बर सकेत—गदा, पद्म कुज और वरदा मुद्रा, वाहन— केशरी (श्वे०) कृष्णसा(दि० यक्षी-शवित्सादेवी (श्वे०) या मानवी (श्वे०) गौरी (दि०)

१२ यक्षी—तसुपूज्य, श्वेताम्बर सकेत—चर्तुबाहु, शर, धनु और सर्प, दिगम्बर सकेत—गदा, पद्म युगल और वरदामुद्रा, वाहत—अश्व (श्वे०) कुम्रा (दि०) यक्षी—चण्ज (श्वे०) या प्रचडा (श्वे०) या गाधारी (दि०)

१३ यक्षी-विमलनाथ, श्वेताम्बर सकेत—चर्तुबाहु, शर, पाश, धनुष और सर्प, दिगम्बर सकेत—दो सर्प, और धनु शव, वाहन-पद्म (श्वे०) सर्प (दि०) यक्षी—विदिता (श्वे०) या विजया (श्वे०) या वैगंत (दि०)

१४. कक्षी—अनतजित या अनतनाथ, श्वेताम्बर सकेत—चतुंवाहु, खडग, पाश, वच्छा और अकुश, दिगम्बर सकेत—चतुर्वाहु, धनुष, शर, फल और वरमुद्रा, वाहन—पद्म (श्वे०) हस (दि०) यक्षी—अकुश (श्वे०) या अनतमति (दि०)

१५ यक्षी—सम्भवनाथ, श्वेताम्बर संकेत- चतुर्वाहु, पद्म, युगल, अकुश और अभय दिगम्बर षकेत- चतुर्वाहु, पद्म युगल धनु वरद, अकुश और शर, वाहन- अश्व (श्वे) मीन (श्वे०] (व्याघ्र (दि०) यक्षी—कन्दर्प (श्वे०] या पन्नगादेवी [श्वे]

वाहन–केशरी (श्वे०) यक्षी—अम्बिका या कुष्माण्डी (श्वे०) या आम्रा (दि०)

२३ यक्षी या यक्ष-पार्श्वनाथ, श्वेताम्बर (सकेत-पद्म पाश, फल और अकुश, दिगम्बर स केत (क) चतुर्वाहु होनेसे अकुश, पद्म युगल (श्वे०) षड्वाहु होनेसे, पाश खडग, चक्र, वर्च्छा, वक्रचद्र गदा और यष्टि (ग) अष्टवाहु होनेसे पाश आदि (घ) चतुर्विश वाहु होनेसे शख, खडग, चक्र, वक्रचन्द्र, पद्म नीलनलिनी, धनुष, वर्च्छा, पाश, घटी, कुशचास, शर, यष्टि, ढाल, कुठार, त्रिशूल, वज्र, पुष्पहार, फल, गदा, पत्र, वृ त, वरदामुद्रा आदि

२४ यक्षी—महावीर या वर्धमान, श्वेताम्बर सकेत-चतुर्वाहु, पुस्तक, निबु फल, अभय मुद्रा और पुस्तक, दिगम्बर सकेत-वरदामुद्रा और पुस्तक, वाहन- केशरी (श्वे०) (दि०) यक्षी सिद्धयिका

नवग्रह या ज्योतिष्क देवों का वर्णन

१. अंचल-पूर्व, ज्योतिष्कदेव-सूर्य, वाहन सप्ताश्व चालित थर श्वेताम्बर सकेत- पद्म युगल दिगम्बर सकेत- + +

२ अचल—दक्षिण, पूर्व जोतिष्क-शुक्र, वाहन, सर्प (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-कुभ दिगम्बर सकेन-त्रिरन्ग सूत्र, सर्प, पाश, और जपमाला

३ अचल—दक्षिण, ज्योतिष्क देव-मगल, वाहन-पृथ्वी (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत—मुतखनन यत्र वरद, वर्च्छा, त्रिशूल, गदा. दिगम्बर सकेत- केवल वर्च्छा,

४ अंचल—दक्षिण, पश्चिम, ज्योतिष्कदेव राहु, वाहन—केशरी (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-कुठार दिगम्बर सकेत-वैजयन्ती,

५ अंचल—पश्चिम, ज्योतिष्क देव-शनि, वाहन कूर्म, श्वेताम्बर संकेत कुठार, दिगम्बर सकेत त्रिरन्ग सूत्र,

तक स्वर्तन होता है; कुठार, वरद, मोदक और अभय, दिगम्बर संकेत-अज्ञात

४. श्री या लक्ष्मी (धनदेवी) वाहन-गज (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत – नलिनी, दिगम्बर संकेत-चतुर्वाहु; पुष्प और पद्म

५ देव— शांतिदेव, वाहन-पद्म (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत— चतुर्वाहु, वरद, जपमाला, कमडलु और कलस दिगम्बर संकेत-अज्ञात। इस प्रकार जैनकलामें आयोजित देवी देवताओका विवरण है। अब हम यहाँ पर जैनकला पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करना भी आवश्यक समझते हैं। निस्सन्देह भारतीय सस्कृतिके दीर्घ इतिहासमें जैनकला और सस्कृति एक अविच्छेद्य अङ्ग है। लिखित किताव छोडकर जितने तरह के स्थापत्य और भास्कर्य केबीच जैन कला व सस्कृति का परिचय मिलता है,उसे विश्लेषण करने से जैनधर्मके बारेमें बहुतसे तथ्य मालूम होजाते हैं। कलाहीं एक तरहकी सार्वजनिक भाषा है। जिसके माध्यममें जनसाधारण धर्म के बारे में बहुत बातें जान सकते है। इन विविधि प्रकारके कला कार्य विविध धर्मावलम्बी बहुतसे अमीरो और राजाओं की अनुकूलतासे रचित होने के कारण और स्पष्ट न होनेसे जैन सस्कृति और दर्शन के बारे में कोई बात बताना आसान नहीं हो सकती।

भारत के जिन स्थानो में जैन धर्मने प्रसार लाभ किया था उनमें से विन्ध्य पहाड के उत्तर भाग या दाक्षिणात्य के कुछ जगह समग्र मध्य प्रदेश और ओडिसा प्रधान है। (आसाम, वर्मा, काशमोर, नेपाल, भूटान, तिब्बत और कच्छ वगैरह स्थानो नें जैन सस्कृति का कोई उल्लेख योग्य स्मारक नही है)

समाज में धर्म को अमर और जनप्रिय करने के लिए शिल्पियोने जो उल्लेखनीय सहयोग दिया और कार्य किया है वह सचमुच चिरस्मरणीय रहेगा शिल्पियो ने अपनी सब तरह की

कलासृष्टि के द्वारा प्रत्येक धर्मकी जो भावपूर्ण अवतारणा की है वह इस युग के ऐतिहासिको के लिए इतिहास लेखन के सारे उपादान देती है। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के रूपायन के बीच ऐसा एक अटूट ऐक्य और पद्धति का एका है, जिस मे एक से दूसरे को जुदा कर देने के लिए सीमा रेखा काटना बिलकुल आसान नही है। जिस शिल्पीने जैनमूर्ति या चैत्य बनाया है, उसीने कही बौद्ध धर्म की अनेक प्रतिमायें और विहारो का निर्माण किया है, क्योकि दोनो धर्म परस्पर एक साथ प्रचारित और प्रसारित होने से रचित शिल्प कला में कला की पद्धति प्राय एक ही तरह की देखने को मिलती है।

प्राड् ऐतिहासिक संस्कृति पीठो में जैन धर्म के स्मारक देखने को न मिलने पर भी मोहनजोदारो से मिले हुए चिन्ता मग्न नग्न पुरुष-मूर्तियो को जैनतीर्थङ्कर कहा जा सकता है। हडप्पा से मिले हुए नग्न पुरुष मूर्ति के साथ अङ्ग गठन से विहार प्रदेश के लाहोनिपुर प्रान्त से मिले हुए नग्न जैन मूर्ति का मेल एसा अधिक है कि हडप्पा के प्राचीन मूर्ति को जैन कला कहकर ही ग्रहण किया जा सकता है। इस विषय में इतना अनुमान किया जा सकता है कि बहुत प्राचीनकाल से एतिहासिक युग म भारतीय कला धीरे धीरे प्रवेश कर देश काल और सामयिक सामाजिक वेष्टनी के बीच नए नए रूप में प्रकाशित हुई है। इस रूपायन में अलग अलग धर्म और उसका प्रतीक और प्रतिमा का विभिन्न परिधान, आयुध और वाहन वगैरह से जो सूचना मिलती है वह एक निरवच्छिन्न ऐक्य का निर्देश देती है। जैन और बौद्ध धर्म के पृष्ठ पोषक तत्कालीन धनी और राजाओ के निर्देश से इस कला का प्रकाश न होने से आज हमे कोई एतिहासिक प्रमाण विभिन्न धर्म के मिल नही सकते है।

मौर्य युग में जो सब जैन स्थापत्य और भास्कर्य के रूपायन देखने को मिलते है, उनमे से विहार के वरावर और नागार्जुन पहाड़ में बनी हुई कई गुफायें (गुहा) उल्लेखनीय है। ऐतिहासिको ने प्रमाणित किया है कि इन गुफाओ को तत्कालीन मौर्य राजाओ ने खुदवाया था। उनके समय मे और कई जैन मन्दिर तेयार हुए थे।

सुङ्ग युग मे जैनकीर्ति रहने वाले उल्लेख योग्य स्थानो में ओडिसा की खडगिरि गुफा और उदयगिरि गुफा सर्व प्रधान हैं। चेदिवशज खारवेल के अनुशासन प्रशस्ति यहा खोदित हुई हैं। खृीष्ट पूर्व पहली शती मे यह अनुशासन खोदित होने की वात, खोदित लिपि से प्रमाणित हैं। सम्राट खारवेल नन्दराजा द्वारा अपहृत 'जैन मूर्तिको मगध अधिकार करके फिर ले आए थे। राजा खुद तीर्थकरो के प्रति अनुरक्त रहने से वे और उनकी रानी दोनो ने खुशी के साथ इन सन्यासियो के विश्राम के लिए खडगिरि की गुफायें खोदित कराई थीं। इस गुफा की निर्माण रीति चैत्य निर्माण रीति से अलग है छोटे छोटे चैत्य में रहने वाले विशाल कक्ष (Hall) यहाँ देखने को नही मिलता। हाथी गुफा में खोदे हुए एव मचपुरी गुफा के नीचे के महल में होने वाले भास्कर्य दुसरी जगह होने वाले स्वल्प स्फोति भास्कर्य मे कुछ अनुन्नत होने पर भी उसकी स्वाधीन गति और रचना की आर से यह वरदूत भास्कर्य से अधिक दृढता (Force) के साथ खोदा हुआ है, यह अच्छी तरह जान पडता है।

ई० पू० पहली शताब्दी तक अनत गुफा, रानी गुफा और गणेश गुफाओ को भास्कर्य मे जैन धर्म की सूचना उल्लेख योग्य है। अनन्त गुफा में चार घोड़े लगे हुए, गाडी में जो मूर्ति देखने को मिलती है और जिसे सूर्य देव नाम से पुकारते

है, फिर सत्य वृक्ष के चारो ओर रहने वाली वेष्टनी और दूसरी र्मतिया बुद्ध जन्म और गजलक्ष्मी मालुम होने पर भी यह जंन धर्म की पद्म श्री है। यह वाद को सिद्धान्त किया गया है। वरदूत भाष्कर्य पु ज में रहने वाले 'शिरिमा' देवता के साथ इसका सामजस्य और ऐक्य मालुम होता है।

जंन 'कल्पसूत्र' के १४ स्वप्नोएव दिगम्बरोके १६स्वप्नोमेंसे यह एक है।तीन फनवाली जो एकदुसरेसे लपेटेहुए सर्पमूर्ति अनतगुफा के द्वार के खिलानके ऊपर दिखाई गई है। जिन पार्श्वनाथ के साथ कलिगका नाता वहुतसे ग्रन्थोमें गिनाया गयाहै यही कारण हैकि उनके प्रतीककी तरह मानो शिल्पिने सर्पमूर्ति अकन करके इस उपाख्यानको अमरकर दिया है। यह सर्पमूर्ति और नाग नागिन मूर्ति परवर्ती कालमें वनाए हुये वहुतसे मदिरोक सम्मुख द्वारपर देखनेको मिलते है। मार्शल के मतमें यह गुफा ई० पू० प्रथम शताब्दी में निर्मित हुई थी। गुफा निर्माण स्थापत्य की दृष्टि से (Cave architecture) ये सव देशो में सर्व प्रथम स्थापत्य है। रानी गुफा दूसरी गुफाओसे अधिक प्रशस्त और उन्नत प्रकार की है। जिस गुफाके खिलान के ऊपर भाग में और दीवारो मे खोदे हुये मडल कलाका प्राचुर्य देखने को मिलता है, सिर्फ इतना ही नही इस गुफा के ऊपर भाग में स्वल्प स्पूति भास्कर्य के वीच एक चमत्कार शिकारी दृश्य देखने को मिलता है। कई शिल्प रसिको ने इस के सौंदर्य पर मुग्ध होकर इस को भित्ति चित्र कहा है। अवश्य ही आजकल इस स्वल्प स्पूति भास्कर्य का ऊपर भाग में कुछ रक्ताभ वर्ण का रग देखने को मिलता है। यह रग कैसे वहा दृष्ट होता है,उसका कोई प्रमाण नही मिलता। उस दृश्यमें पख वाला एक मृग और कई मृग शावक भी दिखाये गये है,उसके पास एक पेड है जिस पर पत्तोके अतिरिक्त

१०. उपसंहार

"Lord Mahavira, like Rishabha, the First Tirthankara, preached his religion in Kalinga".

—(Harivansa-purana)

जैन शास्त्रीय विवरण एव उडियाके इतिहास और सस्कृति के उद्धरणो से यह स्पष्ट हो गया है कि उडीसा के जन जीवन मे जैनधर्म का प्रभाव एक अत्यन्त प्राचीनकाल से रहा। जैन 'हरिवश—पुराण' मे ज्ञात होता है कि अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर वर्द्धमान के बहुत पहले से जैनधर्म कलिङ्ग में प्रचलित था। स्वय प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवने आकर उडिसामें धर्म का प्रचार किया था। प्रसिद्ध जैन तीर्थ कोटिशिला भी उडीसा के अञ्चल मे ही कही छिपा हुआ है ऐसी जैनो की मान्यता है।

प्राचीन काल मे जैन धर्म उडोसा का राष्ट्रधर्म था। कलिङ्ग के राजा भी जैनी थे और प्रजा भी तीर्थङ्करो की उपासना करती थी। मध्यकालतक जैनधर्म का अहिंसाध्वज पूर्णरूपमें कलिङ्ग मे फहराता रहा। जैन राजाओ और धनिको ने उडोसा की भव्यभूमि को मनोहारी मंदिरो और अद्भुत गुफाओ मे सुसज्जित कर दिया। जैन मूर्तियो की वीतरागता ने कलिङ्ग वासियोके हृदयो पर एक छत्र अधिकार कर लिया था। यहा तक कि ऋषभ भगवान की मूर्ति सारे देश की गौरव निधि बन गई और 'कलिङ्ग जिन' के नाम से प्रसिद्ध

परिशिष्ट सं० १

खण्डगिरि की ब्रह्मीलिपि

खण्डगिर और उदयगिरि की ब्राह्मीलिपि

चिन्ह् वर्द्धमगल[1] चिन्ह् स्वस्तिक[2] नमो अरहतान[3] नमो सव सिघान[4] एरेण[5] महाराजेन महामेघवाहनेन चेत[6] राजवस वधनेन पसथसुभ-लखनेन चतुरत (रखण)[7] गुणउपेतेन[8] कलिगा धिपतिना सिरि खारवेलेन पदरम वसानि सिरि कडार सरि-खता किडिताकुमार किडिका ततो लेख रूप–गणना-ववहार विधि विसारदेन सवविजा वदातेन नववसानि योवराजम् व[9] सामितम् सपुण चतुवीसतिवमे तदानि वधमान सेसयो जनाभि-जयो ततिये कलिगराजवसे[10] पुरिसयुगे महाराजा भिसेचनम्[11] पापुनाति चिन्ह् नन्दिपद[12]

.१ वध मगल

२ स्वस्तिक

३ और ४. जैन पाठ्यके पाच नमस्कारो में से ये दो अन्यतम हैं,

5 Dr B M Barua —'ऐरेण'

6 Dr D C Sircar—'चेति'

7. Dr D C. Sircar—'लुठण,

8 Dr D C Sircar & K P. Jayaswal—'उपितेन'

9 D C Sircar—'प'

10 Dr B M Barua—'राजवशे'

11 K P Jayaswal—'माहा'—

१२ 'नन्दिपद'

अभिसित मगोध[13] गधं[14] पत राज गिरि-गोपुर पाकेर-निवेसन पटि नगार रंगि कलिंग नगरी गि गीरे[15] विसज पताप वाहिया न रतनानि नतुगान पटि नाग न कारयति पति-वाहि[16] नत मारतेहि एकसितो दंडनाद[17] तुलिय प नगे ववि-लसिता मानयति[18] पतिमदितं हय-गज-नर-रथ सहु यंते पठानयति रंडित[19] गनाय न तेगा नरियाहि ए दम क नगरं[20] रनितं[21] पुनरंते पत-रेद-तुपा टर नर गात-गरिय नरागाहि उपर नगारेत-हारान गादि न होमयतो नगरीय ।

दसमे[22] च वसे दिवयानापिताय वर्त त्युरन्[23] कलिंग पुत्र-नंदरानान्[24] पसेन वारि रा न पतानरि तरा पत तुरंग[25] नीतानिते न विजि । [illegible]-विन्दारे [illegible] गात्रेन[26] नर-रहिंत-भोजक पाद [illegible] पत मे प [illegible]

---

13 Prinsep—'[illegible]'
14. B. Lal Indraji—'[illegible]'
15 Dr. B. M. Barua—'[illegible]'
16 Dr. K. P. Jayaswal—'[illegible], [illegible]'
17 Indraji—'[illegible]'
18. K. P. Jayaswal और Barua—'[illegible]'
19 K. P. Jayaswal—'[illegible]' और D. C. Sircar—'[illegible]'
20 D. C. Sircar—'[illegible]'
21. Indraji—'[illegible]'
22 Indraji—'[illegible]' Barua, Jayaswal और Sircar—'[illegible]'
23 D. C. Sircar—'[illegible]'
24. D. C. Sircar—'[illegible]'
25 Indraji—'[illegible]' K. P. Jayaswal—'[illegible]'
26. D. C. Sircar—'[illegible]'

समत[27] ओवाटितम तनुमूलियवाटाप णाटि नगर पवेसयति सत-सहसेहि च खनापयति अभिस्तो च अटेवमे राजगिरि[28] सद-मयतो मद कर वण अनुगह अनेकानि सतसहमानि विसजति पोर-जानपद सतमे च [29] वस[30] अमि-छत वज-रथ-रखि-तुरग-नन-वटानि मदति मदमन मद-मगलानि कारयति सतसह सेहि[31]।

अठमे च[32] वमे महना[33] मनाय मवुग अनुपणे। गोरवगरि घातापयिता राजगहान पपीडापयति[34] एनिन च कम पदान[35] पनादेन-स मीत सेन-वाहने विपमुचितु मधुर अपयातो यवनराज[36] मवपर[37] वामिन च मदगहतिन च म पान भोजन च पान भोजन च मदराज भिकान च। मवगह पतिकान च गव ब्रह्मणां न च पान भोजन ददाति। कलिग जिन[38] पलवमार

---

27 Indraji और Jayaswal—,तिदनमत्म' Barua और Sircar—'निवननत'

28 D C Sircar—राजनेव

29 D C Sircar—'ननम'

30 B M Barua—'वमे'

31 D C Sircar—इस पक्ति का अलग पाठ किया है और उनका पाठ दूसरा है।

३२ Prinsep—'च' पढा ही नहीं है।

३३ Barua—'महति सेनाय'

३४ Prinsep—राजगहम् उपपीडापयति'

Indraji राजगह नताम् पीतापयति'

Jayaswal—'राजगहम्-उपपीतापयति'

Sircar 'राजगह उपपीतापयति'

३५ Jayaswal—'कमापदान'

३६ B M Barua—'येवन उदो'

Jayaswal—'यवन राज'

३७ Jayaswal दिमित' या 'जिमिति',

३८ Barua—'कलिग याति'

कारयति[४५]हय-गज नर-रथ सहु याति सव घर वासिनं च सव राय भवकारं च सव पहुणां दान च नव ब्रम्हणानं च पान-भोजन[४६]ददाति अरहतानम् समणानं च ददाति सत सहु सेहि। नवमे वसे ... कलिंग राज निवास महा विजय— पासादं कारयति अठतिसाय सत सहु सेहि दस मेण वसे कलिंग-राज वसान ... नगारवसाने कलिंग पुवराजान मन— गराने[४७]कारापयति मगधहु सेहि। एका दसमेण वसे मणि-रतनादि सहु याति[४८]कलिंग पुवराज निवेसित[४९] पिथुडग-दभ नगरं नेका सयति[५०]जनपद भावं च तेरस-वस सत वस भिदति तिमिर दह[५१]संघात बार वसे च[५२]सहे सत सहु सेहि वितास यति उतरा पथ राजनो मागधानं च विपुल भयं जनेतो हथीन सुगंग[५३]पायपति मगधानं च राजानं बहसति मितं पादे वंदापयति नदराजनीत[५४] कलिंगजिनं सनिवेश अंग मग—

---

४९. Cunningham—'करा् उत'
Indraji—'कयकमा'
Jayaswal—'कम्परुखे' वा 'कपरुख'
५०. D C. Sircar—'दसमहुने च कावसिनु कया याती कर परिहार'
५१. D C Sircar—'ऐसे पाठ गामरानो भरधवस पठानं सह सवनं' १० में पाठ की मात्रा उन्होंने नहीं दी है
५२. Prinsep—'वाति,Indraji—'वापयाता'
Jayaswal—'वापयत Sircar—'वासयते'
५३. D. C. Sircar—'पूर्व राजं निवेसितं'
५४. D. C. Sircar—'पीथुडं गदभ नंगलेन कासयति'
५५. D C Sircar - 'जनपदं भावनं च तेर वसस सतं कर्मं तिमिर दह'
५६. Indraji—'भारवस
५७. Prisep - हथनं गगन' Jayaswal=हथी सुगंगीयम्'
५८. Barua—'नदराज निं कालिंग जिनासनम्'

घतो कलिंग आनेति हयगज-सेन वाहन-सह सेहि अग—मगध वासिन[४९] च पादे वदापयति। वीथि—चतर—पलिखानि गोपुरानि[५०] सिहरानि निवेसयति। सुतवासुको[५१] रतन पेसयति[५२] अभुत मछरिय च हथी निवास[५३] परिहरति[५४] मिग-हय-हथी उपानामयंति[५५] पड राजा विवधाभरणानिसुता मणि गतनानि आहरापयति इध सत-सहासानि सिनो वसो कारेति तेरसमे च वसे सुभावत विजयने कुमारो पवते अरहणे परिनिवसतो हि कायनिसी दियाय राजभतकेहि राजभातिहि राजनीतिहि राज पुतेहि राजमहिषि खारवेल सिरिना सत वस लेण सहकारापितम्[५६]

सकति समता[५७] सुविहितान च सवदिसान[५८] अनन तापस-इसिन सपियन[५९] अरहत निशी दिया[६०] समीपे पभारे वराकर समुथापिताहि अनेक योजनाहि ताहि पनति साहि सत सह सेहि-सिनाहि सिनथंभानि च चेतिया निच कारापयति पटलिक चतरे

४९ Sircar—'अ ग मगध वसु'
५० K P Jayaswal—'त जठर लिखिलवरानि'
D. C Sircar—'कतुजठर लिखिल'
५१ D C Sircar—'सतवसिकेन'
५२ D C Sircar—'परिहारोहि'
५३ Barua—'हथीस पसदम्'
५४ D C Sircar—'परिहर'
५५ D C Sircar–'रतनमाणिक'
५६ D C Sircar='ने इसका अलग पाठ किया है-'तेरसमे च वसे सुपवत विजय चके अरहतेहि पखिन ससिततेहि कायनिसि दियाययापु जाव केहि राजभितिक चिनवतानि वासीसितानि पुजानु रत-उवासग-खारवेल सिरिना जावदेह सयिना परिखाता।
५७ Jayaswal—'सुकति'
५८ Barua—'सतदिसान'

घ वेडरिय गभे थभे पटि ठापयति पनतरिय सतसहृ सेहि मुरिय कल वोच्छिन[61] चेचयति अध सतिक तिरिय[62]उपादयति खेम-राजस वढराजस[63] इदराजस[64]धमराज पसतो सनतो अनुभ-वंतो कलाणानि गुण विशेष कुशलो सवपासंडपुजको सव देवा-यतन सकार कारको अपतिहत चको वाहृन वलो चकधरो गुतचको पवतचको राजसिवसु-कुलविनिसितो[65] महाविजयो राजा खारवेल सिरि (चिन्ह वृक्ष चैत्य[66])

खडगिरि और उदयगिरि के दूसरे शिलालेख

(१) वैकुण्ठपुरी गुफा—

अरहृतम् पसादायम्[67] कालिंगानम्[68] समनानाम् लेणम् कारितम् राजिनो ललाकस हृथिसहृस पपोतस[69] घुतुना कलिंग चकवति नो सिरि खारवेलस अगमहिमहिसना कारितम् ।

२ मचपुरी गुफा—

एरस[70] महाराजस कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहृनस

---

५६ Baru—'यतिन तापसइसिन लेण कारयति'

६०. Indraji—'निम्मिदिय'

६१ D C. Sircar–'मुखिय कल'

६२. D C. Sircar–'अंगतक तुरिय'

६३. Barua–'वघराजस'

६४. Sircar–'भिखुराजस'

६५. Barua–'राजिसि-वश-कुल-विनिसितो'

६६ वृक्षचैत्य'

६७ Barua—'पसादानम्'
Sircar—'पसादाय'

६८. Caunningham—'विंनगानम्'

६९ Barua—'हृथिसाहृसं पनातम्'

७०. R. D. Banerjee—' अरम'
D. C. Sircar—'एरत'

रहस सिरिनो[71] लेणम्

(३) कुमार वटुखस लेणम[72]

(४) छोटा हाथीगुम्फा—

अगि—अ पवंतम[73]

अगि अ पवतम्[73]

(५) सर्प गुम्फा—

चुलकमस कोठाजेय च

(६) कंमस हलखिनाय च पसादो

(७) हरिदास गुम्फा—

चूलकमस पसातो कोठाजेया च

(८) व्याघ्र गुम्फा—

नगर अखदंस[74]

सभूतिनो लेणम्[75]

(९) जम्बेश्वर गुम्फा—

महामदास बारियाय नाकियास लेणम्

(१०) तत्व गुम्फा-(२)-

पादमुलिकस कुसुमास लेणम् कि[76]

(११) अनन्त गुम्फा—

...दोहद समणानम् लेणम्[77]

(१२) कोठाजेया

---

७१. Sircar—'चकस सिरिना' R D Banerjee—'...नगिरि'

७२. Rajendra L. Mitra—'लेणम्'

७३. R. D. Banerjee—'क ख पाठ को B M Barua ने गलत घोषित बताया है।

७४ B M Barua—'नगर अखदस सूतिनो लेणम्'

७५ Prinsep और R. L. Mitra ने गलती से 'सोलम्' पढ़ा था।

७६. B M Barua—'पादमुलिकस कुसुमस स्ताति'

७७ B. M. Barua—'समणानम् लेणम्'

(१३) तत्त्वगुफा—(१)-

सीपुतसकया •

खण्डगिरि और उदयगिरि के ये शिलालेख पुरानी ब्राह्मी-लिपि मे लिखे है। ये लेख ईसा के जन्म से पहले पहली सदी के अन्त में या बाद ही लिखे गये थे, क्योकि ऐतिहासिकोने खारवेलके हाथीगुफा वाले शिलालेख की नायनिका के नाना-घाट वाले शिलालेख के साथ तुलना करके बताया है कि हाथी-गुफा का शिलालेख नानाघाट के शिलालेख के बाद का है। डा० दिनेशचन्द्र सरकार के मतमें नानाघाट का शिलालेख ईसवी पहली सदी के मध्यभाग का है। अत हमें इस पर विश्वास रखना चाहिये कि हाथीगुफा तथा खण्डगिरि और उदयगिरि के शिलालेख ईसा के पहले पहली सदी के अन्त के या ईस्वी पहली सदी के हैं।

शिलालेखो की भाषा पालीभाषा से बहुत मिलती-जुलती है। असल में कुछ खास शब्दो को छोडकर शेष शब्द पाली के है। आमतौर पर इन शिलालेखो की भाषा पर अर्द्धमागधी का प्रभाव अप्रतिहतन रूपसे है। अशोकके गिरनार के शिलालेखो के पाठसे स्पष्ट जान पडता हैं कि वह पाली और किसी पश्चिम भारतीय भाषा का मिश्रण है। उसी तरह पाली के साथ हाथीगुफा के शिलालेख की समता का विचार करके इसे कलिंग की व्यहृत प्राकृत भाषा कहना अनुचित नही होगा। यहा एक सवाल आ सकता है कि पाली मुख्यतया बौद्धो की भाषा है। खण्डगिरि तथा उदयगिरि के जैन शिलालेखो पर इसका असर हुआ कैसे ? इसके उत्तर मे कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। तो भी यह स्वाभाविक और सम्भव है कि पश्चिम भारतीय किसी जैन उपासक से या बौद्धधर्म का त्याग करके जैन धर्म को अपनायें हुए किसी सन्यासी द्वारा खण्डगिरि

तथा उदयगिरि के शिलालेखो की रचना की गयी हो जिसमे पाली भाषाके साथ इन लेखोकी भाषाकी इतनी समता है। अथवा गुफाओ मे पाली भाषा रचित प्रशस्तिया लिखने का भार किसी जैन सन्यासी पर था और वह अर्द्धमागधीके प्रभावमे प्रभावित था

उस जमाने में कलिंग की बोलचाल की भाषा का स्वरूप बना सम्भव नही है।

यद्यपि हाथीगुफा के तथा दूसरे शिलालेख गद्यमय है, फिर भी उन लेखो का ढग सावलील है और उन में काव्यिक उपादान भरपूर है। चक्रवर्त्ती खारवेल और उनकी महारानी के शिलालेखोका बहुत सा भाग काव्यरीति लिखे है। इस काव्य रीति की योजना के कारण खण्डगिरि तथा उदयगिरि के शिलालेख इतने आकर्षक बन गये है।

परिशिष्ट सं० २

ओडिसा में जैनों का निदर्शन *

बालेश्वर जिल्ले में जुलाहो की सख्या ५६०००, आगे ये बहुत अच्छा कपडा बुनते थे, लेकिन विलायत से कपडे आजाने के कारण इनका व्योपार नष्ट हो गया और बनाई का काम छोडकर ये लोग किसान मजदूरो का काम करने लगे, इनमें से जिनको अखिनी और खोरिआ चती कहा जाता है, वे पहले बगाल से बालेश्वर को पतले धागे की बुनाई सीखने आये थे। मानभूम गजेटियर से मालूम होता है कि सराक लोगो के भीतर अखिनी जातिके जुलाहे भी है। उससे मालूम होता है कि बालेश्वर की अखिनी जातिके जुलाहे पुराने जमाने में श्रावक थे और इनका धर्म जैन था। बालेश्वर जिलेमें अघोरी

---

* प्राचीन जैन स्मारक (बग, विहार, ओडिसा) लेखक–धर्म दिवाकर सीतल प्रसाद जैन ग्रन्थ से सग्रहित। जैन पुस्तकालय, सुरत।

जाति के कई लोग है, वे उग्र क्षत्रिय कहलाते है। वे व्योपार वाणिज्य करते थे। अनुमित होता है कि शायद वे एकसमय अग्रवाल थे।

सुवर्ण रेखा नदी के ऊपर वालिआपाल से सात मील पूर्व करतसाल गाव है। वहाँ करट राजाके प्राचीन किले मौजूद है।

सिंहभूम जिल्ला

बेंगाल गेजेटियर ई० १९१० vol. INo 20 सिंहभूम-छोटा-नागपुरके दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। क्षेत्रफल-३८९१ वर्गमील लोक सख्या–६१३५७९, पूर्व में मेदिनीपूर, दक्षिणमें मयूर भज, पश्चिममें गागपुर और रांचि तथा उत्तरमें रांची और मानभूम, वामनघाटी प्रान्त (बारहवी सदी) ताम्रलेख से मालूम होता है कि मयूर भज के भज वशीय राजाओ ने श्रावको को बहुत ग्राम दिये थे उक्त वश के सस्थापक वीरभद्र एककरोड साधुओ के गुरू थे। (बेंगाल जर्नल ए०, एस०, ई० १८७१, पृ० १६१-६२) ये जैन थे। वहा के तावा की खाणि में इस स्थानके श्रावक काम करते थे।

वहा के पहाड, घाटी, घन जगल और नजदिक गाव में बहुत सी प्राचीन कीर्तिया अब भी मौजूद हैं। यह अचल श्रावकों के अधीन में था।

मेजर टिकलने लिखा है (१८४०) सिंहभूम श्रावको के हाथ में था। लेकिन अब नही है। तब उन की सख्या औरो से कही अधिक थी। उनके देशका नाम था शिखर भूमि और पाचेत। उनको बडी तकलीफ देकर निकाल दिया गया है (जर्नल ए० एस० बेंगाल, १८४०, स०–६८६)

कर्णेल डालटनने बेंगाल एथनोलोजीमें लिखा है, सिंहभूमके कई हिस्सा एक ऐसे दल के हाथमें थे कि जो मानभूम में अपने प्राचीन स्मारक छोडगये हैं। वस्तुत वहाँ बहुत पुराने लोग रहा

करते थे। उनको श्रावक या जैन कहा जाता था। अव भी कोलहनको 'हो' जाति के लोग कई तालावो को 'सरावक' (श्रावक) सरोवर कहते हैं।

श्रावक या गृहस्थ जैन लोगो ने जगल के भीतर तावे की खाने ढूंढ निकाल कर उनमें अपनी सारी शक्ति तथा समय को विता दिया है। (A S B 1869 P 179-5) मानभूम का जैन मन्दिर १४ वी या १५ वी सदी का परवर्ती नहीं है। अत उस समय के पहले वहा जैन घम का प्रवेश करना सभव है।

वेनु सागर में कई प्राचीन (सातवी सदी के) जैन मदिर हैं। एक वौद्धमूर्ति और एक जैनमूर्ति भी है। यह वेनुसागर के राजा कृष्ण के पुत्र 'वेनु' के द्वारा खोदित है। कोलहन—यहा के प्राचीन अधिवासियो ने वहुत तालव खुदवाए थे।

रुआम—घाल भूमि के महुलिया ग्राम से दक्षिण पश्चिम के दो मील दूर पर कई स्थानो में श्रावको की वसति रहने का प्रमाण मिलता है।

'शिक्षा' (वाकीपुर ता० ८-५-१९२२) पत्रिका से मालूम होता है कि 'हा' और भूया जात्ति के अलावा दूसरे जाति के लोगोंका यहा (सिंह भूमि) आना ३०० साल से अधिक नहीं है। सौ साल के पहले सिंह भूमि के वहुत से स्थानो में खासकर पोडाहाट में वहुत जैन लोग थे।

उन्हे वहाँ के आदिम निवासि लोग 'सोराख' (सराओगी) कहते हैं। उस समय का प्राचीन मन्दिर, मूर्ति, गुहा, पुष्करिणी आदि का अवशेष देखकर मालूम होता है कि वे ऐश्वर्यशाली और स्वाधीन थे। वहा मिट्टी के भीतर से रुपए, मुहरें, चित्रित टूटा हुआ काच, चुडिया और मूल्यवान पत्थर की मालायें मिलती हैं।

हासी, वुण्डु, मोत, हुरुण्डो, हेउलसाहि, नुग्राडिह, मोड, नौडह आदि ग्राम और विभिन्न स्थानो मे प्राचीन जैनमूर्ति मन्दिर और सरोवर देखने को मिलते है । मूर्तियो मे वहुत सी पार्श्वनाथ की है । हुरुण्डि मे उषभ देव की एक मूर्ति भी है अब उसी मूर्ति को वासुदेव की मूर्ति मानकर लोग उसकी पूजा करते थे । तैल और सिन्दूर से रगते थे । नग्राडिह के श्रावक लोग जनेऊ लेते हैं और पार्श्वनाथ की पूजा भी करते है। ये महापात्र, पात्र, दृत्त, सान्तरा, वर्धन, महान्त्र, ग्रहिवुधि, सामग्री, देवता, प्रमाणिक, आचार्य, वेहेरा, दास, साधु पुष्टि, महात, मोहता, मण्डल, वैशाख, राउत, नायक, निशंक, मौधुरी मुदी, सेनापति, उच्च, नाहक आदि भिन्न भिन्न सज्ञाधारी है। इनके गोत्र चार प्रकार के होते हैं—अनन्त देव, क्षेमदेव, कश्यप और कृष्ण देव ।

सराक और रङ्गणी जुलाहे के आपस में विवाह का सम्बन्ध नहीं हो सकता, ये खुद खेती का काम नही करते । उनके पुरोहित भी नही है । रङ्गणी जुलाहे लोग ब्राह्मणो के हाथसे पानो नहीं पीते है । सराक लोग डिम्बिरो आदि फल में कीडा रहने के कारण उने नही खाते है और प्याज गोभी और आलू भी नही खाते है । ये खण्डगिरि को आते है । विवाह काड और शुद्धि क्रिया नामक दो ग्रन्थ उनके पास है । उस से ये पुरोहित की सहायता के विना वैवाहिक सस्कार कर लेते है।

कटकजिला

आसिया पहाड—छतिया पहाड, चादोल, जाजपुर, रत्न-गिरि, उदयगिरि (जाजपुर) आदि स्थानो में जैनमूर्तिया हैं। ओसिया पहाड को चतुरावोट भी कहते है । जाजपुर के अखडे-श्वर मन्दिर में अन्य मूर्तियो के भीतर एक छोटी सी जैनमूर्ति

उपस्थित है। कटक जिले के सिसिरिया, बराम्बा, धौली और पुरी जिले के पिपली थाना में सराक जुलाहे रहते हैं।

कोरापुट जिले में जैनमूर्ति*

भैरव सिंहपुर — जयपुर बस्तार का एक गाँव — पहाड़ के नीचे-२००० फुट ऊँचाई पर जनसंख्या १९४१ (१०४१ मर्दुमशुमारी)

एक समय यह गाँव जैनधर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ बहुत जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। कई एक फुट, कई पाँच फुट और कोई सात एक फुट से छोटी होंगी, यहाँ ऋषभनाथ की एक अंतिम मूर्ति है Steatite पत्थर की। इसी गाँव के लोग इससे कुल्हाड़ी आदि में धार देते हैं यहाँ एक शिव मंदिर है। उसी शिव मन्दिर की भीतरी भीत पर बहुत-सी जैन मूर्तियाँ रह गयी हैं। अब यहाँ ब्राह्मणों की बस्ती है।

जयपुर में कई जैनमूर्तियाँ दिखायी जाती हैं। परन्तु उस समय किन किन जातियों के लोग जैन थे, उसका प्रमाण नहीं मिलता। [पृष्ठ ५२ कोरापुट जिला गजेटियर १९४५]।

परिशिष्ट ३

उड़ीसा के जैनी और खण्डगिरि उदयगिरि की गुफायें

उड़ीसा में अब जैन नगण्य हैं। कटक के चौधुरी के वंश धरों का कहना है कि मंजिनाथ दिगम्बर जैन थे। वे नागपुर से आए थे। यहाँ जैनों के विवाह और शुद्धि क्रिया किसी पुरोहित द्वारा सम्पन्न नहीं होती जैन स्वयं या से किसी एक भूत पण्डित से इस कार्य को सम्पन्न कराते हैं। हिन्दू या ब्राह्मणों में जिस तरह 'कर्णवेध' होते हैं उसी तरह यहाँ के जैन लोग नहीं करते। इस जाति के लोग निर्ग्रन्थ गुरु से दीक्षा ग्रहण करते हैं। यहाँ के जैन 'नवतिलक' मनाते हैं। मृत हुए आत्मीय का स्मरण

*कोरापुट जिला गजेटियर-१९४५-पृष्ठ-१४८

दिन मे ये शुद्ध होते और तेरह दिन वाद श्राद्ध करते है । प्रथम श्राद्ध के वाद फिर मृत व्यक्तिका वार्षिक श्राद्ध नही करते है ।

उडीसा के जैन अन्य जैनो की तरह केवल निरामिश खाद्य खाते है । मद्य मास मधु हर किस्म के मूल तरह २ के उदम्बर और २२ प्रकार के दुसरे अभक्ष्य खाद्य नही खाते ।

माघ सप्तमी के दिन खडगिरि जैन मन्दिर के तीर्थंकरो को 'खड खीर' भोग लगता है । दूध अरूआ चावल और खाड आदि मिलाकर 'खंडखीर' तैयार होता है । कहते है जो आदमी माघ सप्तमी के दिन कोणार्क के चन्द्रभाजा में स्नान कर, पुरी जगन्नाथ दर्शन के वाद खडगिरी जाकर 'खडखीर' भोग खाएगा, वह स्वदेह स्वर्ग यात्रा करेगा ।

खडगिरि और उदयगिरि के पहाड में निम्नलिखित गुफा समूह है :

खडगिरि —	उदयगिरि
१. तोता गुफा (१)	१ राणी हंसपुर
२ तोता गुफा (२)	२-३ वाजादार गुफा
३. खोला गुफा	४ छोटा हाथी गुफा
४ जेंतुलि गुफा	५ अलकापुरी
५ खडगिरि	६. जय विजय
६ धानवर	७. ठाकुरानी
७, नवमुनि	८. पणस
८ वार भु जा	९. पातालपुरीं
९ त्रिशूल	१०. मचपुरी
१० अभग्न गुफा	११ गणेश गुफा
११ ललाटेंदु गुफा	१२ दानघर
१२. आकाश गगा	१३ हाथी गुफा
१३ अनत गुफा	१४ सर्प ,,

१४ जैन मदिर
१५ देव सभा

१५ बाघ „
१६ गणेश्वर „
१७ हरिदास „
१८ जगन्नाथ „
१९ राई „

जयपुर के नदपुर और जैनगर नामके स्थानो में बहुत से जैन गुफा दिखते हैं, और जयपुर के करीब अधिकाश देव मदिर में इस धर्म की मूर्तिया दूसरे धर्म के देवता की तरह पूजा को पाते हैं।

The Jaina remains are visible in Jeypore and Nandapur and confirm the idea that once it was a place of Jaina influence The heaps of Jaina images and the vast remains of Jaina temples clearly indicate that in the days past Nandapur was a centre of Jaina religion

—B Singh Deo's Jeypore in Vizrgapatam p 3

It is worthy of note that even in Hiuen tsang's time Kalinga was one of the chief seats of the Jains —Beal's Si-yu ki Vol II p 205

[The characteristic feature of Jainism is its claim to universality × × It also declares its object to be to lead all men to salvation and to open its arms—not only to the noble Aryan, but also to the low-born Sudra and even to the alien, deeply despised in India as the Mlechha]

—Buhler p 3

ओडिसा में जैन धर्म और तत्वविचार प्रसङ्ग में जैन 'हरिवश' से स्पष्ट होता है कि दक्ष के पुत्र आलेय और बेटी मनोहारी थे। मनोहारी की खूबसूरती उसके रूप और

यौवन को देखकर स्वय दक्ष इतना चचल हो उठा कि वे अपने को सम्हाल न सके। इससे रानी इला खीझ कर पुत्र आलेयको लिये दुसरी जगह चली गई। वहा आलय ने इला-वर्धन नाम से एक नगर बसाया। इस इलावर्धन का दुसरा नाम दुर्गादेश था। यह दुर्गादेस ताम्रलिप्त तक व्याप्त था।

इला पुत्र आलेय ने फिर नर्मदा के किनारे माहिष्मती नगर वसाया। और बाद को आलेय जैन सन्यासी हो गए। आलेय के वाद कुनीन राजा हुए। उसने विदर्भ में कु डिनपुर वसाया था। इस कु'डिन पुर को नल राजा गए थे। वहा उसने अपना वस्त्र खोया था याने नल वहा दिगम्बर जैन हो गए। नल दमयन्ती उपाख्यान में विशेषत. यह ध्यान देने की बात है। और जैन धर्म किस तरह नर्मदा किनारे से ताम्रलिप्त तक व्याप्त था, यह भी ध्यान देने की वात है।

हम.रे जगन्नाथ मन्दिर के रधन रिवाज को नल रधन कहते हैं। इससे मालूम होता है कि जगन्नाथ मन्दिर में नल का प्रभाव पडा था, जव नल दिगम्बर जैन हो गए और जगन्नाथ मन्दिर से नाता स्थापित हुआ, तव सम्भव हैं उसी के कारण जगन्नाथ मन्दिर की रधन प्रणाली को 'नल रधन' कहा गया, काव्य में विचित्रता दिखाने के लिए अवश्य नल दमयन्तीका मिलन फिर किया गया है जो हो इस कहानी से इतना तो मिलता है कि नलने जैनधर्म ग्रहण किया था।

वैल जहा भ० ऋषभ का वाहन है, वहा वह महादेव का भी वाहन है। हमारे 'वासुआ वलद' से मालूम होता है कि वासुदेव वैल का उपभ्रश होगा। फिर इससे यह मालूम होता है कि ऋषभ देव से आरम्भ करकें जैन धर्म और महादेव धर्म या शैव धर्म हें, फिर वाद को वशिष्ट नन्दिनी को लेकर विस्वामित्र और शिवमें घोर विवाद को लें तो भासता है

कि हिन्दू धर्म और उसके बीच क्षत्रिय ब्राह्मण के वाद इसतरह चल रहा था, लेकिन इन सबकी जड़में एक स्वतन्त्र चिन्ता धारा के लिए कई और धीरेधीरे एक चिन्तामे दूसरी चिन्ता किसतरह परिवर्तन होती आई है, इसका इतिहास मिलता है।

इस गाय या वैल या साड को लेकर जैन धर्म से शैव धर्म शैव धर्म से वैष्णव धर्म की उत्पत्ति अच्छी तरह मालुम होती है। साड सिर्फ उपलक्ष मात्र है। धर्म भी एक चतुष्पद गाय के रूप मे कल्पना किया गया है। यह जैन धर्म मे है फिर हिन्दू धर्म में भी है। सत्य एव द्वापुर और कलि में धर्म कैसे चतुष्पादमे धीरेधीरे एक पाद फिर घोर अन्धकारको आता है, और जाता है उसका तथ्य निहिति कियागया है। अत जैनधर्म ही आद्य धर्म, ऋषभ इसके आदिदेवता, वृषभइनका वाहन अर्थात् पहले मानव का प्रथम सखा, सहायक होता है यह वैल वृषभ।

धर्म कलिगसे सिहलको गया है—ऋषभदेव, सिहलमहावशमे लिखा है ऋषभदेवने फिर मगध जाकर उत्कलके इस आदिधर्म का प्रचार वहा किया था। स्थविर वलि जैनग्रन्थमे उल्लेख है कि एक वुड्ढा हाथी नदीस्रोतमे डूवगया। उसका शव समुद्रमे वह गया एक कौआशवके पीछ योनिके अन्दर घुसकर रहगया जव जलचरोने उस शवको खा लिया तो कौआ निकलकर उडगया।

इस कहानीका रहस्य भेद करना कठिन है। तवभी इतना जान पडता है कि उत्कलका उड्डियानतन्त्र देशविदेशमे प्रचारित हुआथा, जिसतरह नदीम नात्र वह कर वादको विशाल समुद्र मे जाती है। वर्णन है कि भ० महावीर कलिंग राजाक सुहृद्‌थे। जैन दिन-यानमेवर्णित है कि भरतराम के विदाय देकर नन्दाग्राम मे रहने लगे, इस नन्दोका अय होताहै सांड। यह मानो सॉड पूज ने वाले वशमे अन्तर्भुक्त हो गए अर्थात जैनधम ग्रहण करलिया।

चन्द्रगुप्त चन्डनामके सॉडसे सुरक्षित हुए थे अर्थात् चन्द्र

गुप्तने जैन धर्म ग्रहण किया था। इसका अर्थ यही होता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थो में पाँच वृक्ष प्रसिद्ध है यथा-अशोक वट, विल्व, अश्वत्थ और शामी। इन पाच वृक्षों को तरह तरह के आदमी पूजा करते थे। भुवनेश्वरके गर्भवट या गरावट ब्राह्मण वटवृक्षके उपासक थे। उसीतरह महादेव पूजक ब्राह्मणों को विल्व वृक्ष पूज्य था। हमारे यहा यह मामूली बात है कि वट और अश्वत्थका विवाह हो गया था। इसका अभिप्राय यह होता है कि दो धर्म सम्प्रदाय काल क्रमसे मिल गए थे। अश्वत्थ ही जैनधर्मका प्रतीक और वही हिन्दू धर्मका। लेकिन फिर कल्प वृक्ष भी जैनधमका चिन्ह है। खारवेल विल्वके उपासक निकलते है। खारवेल शब्द में ही विल्व शब्द का उल्लेख है।

पूर्ण कुम्भ नारी के स्फीत वक्ष का चिन्ह है। उस पूर्ण कुम्भ को देखना शुभ होता है। ऐसे सोचकर हम मगल घड़ी में घर में पूर्ण कुम्भ या पानी के कलश जल भरकर रखते है। पूर्ण कुम्भ फिर जैन धर्म के भ० मल्लीनाथ का चिह्न होता है। श्वेताम्बर जैन कहते है कि वे पहले नारी थे। और बाद को नर रूप को धारण किया था। हिन्दू शास्त्र के अर्द्ध नारीश्वर की तरह यह बात है। इन मल्लीनाथ का सादृश्य फिर हमारी सुभद्रा से है। उनका चिह्न होता है कलश, मारीच की पत्नी कलश पूजा करती थी अर्थात् वे जैन थे।

जैन 'स्थविरावली' में लिखा है, जैसे जलते हुए अङ्गार कुचले पानीके लगनेसे धीरे धीरे बुझ जाता है, उसी तरह उम्र बढ़नेके साथसाथ मानवकी काम वासना प्रज्वलित हो कर धीरे धीरे बुझने लगती है। किन्तु कोयलेमें आग लगनेसे जिस तरह कोयला अग्निमय होता है, उसी तरह युवती नारीके नूतनस्पर्श से नर रूपी जीर्ण तरु भी फिर वसन्तायित हो उठता है।

भ० आदिनाथ ऋषभ के वाहन वृषभ है। यह चिन्ह हमें

शिक्षा देता है कि वृषभ जिस तरह व्यर्थ ही अपनी शक्ति अपव्यय नही करता, गाय का ऋतु समय होने पर ही वह उसके पास जाता है, आदमी को भी वैसे ही उपयुक्त समय में ही नारी के साथ युक्त होना उचित है । सब समय नही। नही तो आदमी, शीघ्र ही जीर्ण और शक्ति हीन हो जायगा।

जैन धर्म में भ० पार्श्वनाथ का चिन्ह सर्प फण है। यह पार्श्वनाथ पर्शुराम के सदृश भासते है। पार्श्वेश्व और पर्शुराम दोनो एक प्रतीत होते हैं।

भ० महावीर का चिन्ह सिह है, वैसे जो राजाओ की केशरी उपाधि हुई वह इस चिन्ह से ही हुई प्रतीत होती हैं । महावीर का अर्थ हनूमान भी मिला है । ओडिसा में हम हनूमान को महावीर कहते हैं। ये सब जैन थ, और अगद राज्य के रहने वाले हैं वाद को जव जैन धर्म चलागया तव यह राज्य कोगद नामसे परिचित हुआ, अर्थात अगद कहाँ, क. अगद, उससे कोगद हुआ माने उडीसा से जैनधर्म चलागया।

लगता है कि विमला जैन मकुराइन, शीतला भी, और जगन्नाथ जैन थे। भागवत धर्मका सादृश्य जैन धर्म से है।

जैन 'भगवती सूत्र' में है कि भ० महावीर लाढ देश के एक गाव में गए थे, जहा कुत्ते पालते थे। जैन शास्त्र में एक कहानी है कि ऋषभ ने एक आदमी को गाय पीटते हुए देखा क्योकि वह नाज खा जाती है। ऋषभ यह दृश्य देखकर करुणार्द्र हो कहने लगे, उसे क्यो मारते हो ? उसके मु ह में (वु डी) ढकना देदो। इस पर वह आदमी वोला 'वह कैसे दिए जाते है ? मे नही जानता।' तव ऋषभ ने एक ढकना वनाकर गाय के मु ह में वांध दिया। इसका फल यह हुआ कि गाय नाज नही खा सकी। परन्तु इस तरफ ऋषभ को भी कुछ दिनो तक खाना नही मिला, वे कष्ट पाने लगे 'कर्म का फल भोगना पडे गा'-यही इस कहानी का मर्म है।

सोराशत जैन धर्म की कथावार्ता का प्रभाव उडीसा की सस्कृति में मिलता है।

शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ऊ	२०	आविष्यकार	आविष्कार
,,	२२	हल करने	हल चलाने
ऐ	१७	लिहाई ´	निहाई
क	२२	विर्द्दिष्ट	निर्द्दिष्ट
,,	२४	रूपष्टरूप मे	स्पष्ट रूप से
ग	१६	वोड	वोज
,,	१८	वोड़	वोज
,,	२०	वोड	वोज
,,	२३	द्वीपसे	द्वीपमें
घ	१	ईस	ईसा
,,	१०	पूर्न	पूर्व
,,	२२	इलाके	इलाके के
१	१	आदिकालीन का	आदिकालीन
४	६	अनुपात	अनुताप
५	१६	जैनियो	जैनियो की
७	७	नास्ति वक्तव्य	नास्ति अवक्तव्य
६	१२	मौज्ञ	मोक्ष
२०	१६	धर्म के	धर्म की
,,	१७	समाज में	आधारित समाज में
,,	२२	अरिष्टनमि	अरिष्टनेमि
२१	२३	जमाने	जमाने में
,,	२६	राज सुसेनजित	राजा प्रसेनजित
,,	२७	पर्श्वनाथ	पार्श्वनाथ
२२	२४	सम्राज्य	साम्राज्य
२३	१२	महाराज	महाराष्ट्र
२४	१७	सर्वदर्श	सर्वदर्शी
२७	१०	पट्टभूमि	पृष्टभूमि
२८	८	यर्पाप	पर्याय
३७	२२	आलाप	आलाप में
३६	६	समाधन	समाधान
,,	१७	प्रमाणिक—	प्रामाणिक—
४२	१८	सगवश	सु वश
४६	१	अन्तिम मात्र का	अन्तिम पाद का मानना
५२	१४	हम	हमें
,,	१५	रभाप्रसाद चद	रामप्रसाद चदा
५७	१	विद्याधरों को	विद्याधरो के
६२	१८	खरवेल	खारवेल
,,	२४	शीभायात्रा	शोभायात्रा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६	६	हुआ था	हुई थी।
७०	१६	करने को	करने के
	२१	न	के
	२८	धर्मों व	धर्मभावा-
		भावन्न	पन्न
७८	६	औ	×
७९	३	और	×
	१६	आलम्बन के	जग के
		का	आलम्बन
८४	१	नावला	नावना
		पाजि"	पाजि
	८	देवर	होव
८७	२ व ४	'नावला	मादना
		पाजि'	पाजि
८९	१३व१५	नावला	नादना
		पाजि	पाजि
९१	३	जा	जिन
९५	८	धन्यों में	धन्यों में
९७	११	मिलनी	मिलती
११०	११	विन्विन्दा	किन्किन्धा
१२३	१३	कुन्देनी	कुन्देवी
१३३	३	नापव	नापव
"	१६	निम्नदेह	निम्नदेव
१४९	८	महान	महानात
	१०	चौटी	चोटी
"	२६	चतुरानोट	चतुष्कोट
१५६	३	जैव	जैन
"	८	हौटी	होटी
१५७	३	मकवा	मन्वा

चऊँरीधारक—सुलुमराज; नि० स्थान स० शि० गर्भ चैत्र सुदी १ जन्म व तप मगसर सुदी ११ केवल ज्ञान पोह वदी २ निर्वाण फागुन सुदी ५

२०. तीर्थंकर मुनिसुव्रत; जन्मस्थान—राजगृह; पिता—सुमतिराज; मात—पद्मावती; विमान—अपराजित देव लोक; वर्ण—कृष्णाभ; केवलवृक्ष—चम्पक; लांछन—कूर्म; यक्ष—वरुण; यक्षी—नरदत्ता (श्वे०) वाहुलीपाणि (दि०); चउँरीधारक—अजित नि० स्थान स० शि० गर्भ श्रावण वदी २ जन्म व तप वैसाख वदी १० केवल ज्ञान वैसाख वदी ९ निर्वाण फागुन वदी १२

२१. तीर्थंकर—नमिनाथ; जन्म स्थान—मिथिला पिता—विजय राज; माता—विप्राराणी; विमान—प्रणत देवलोक; वर्ण—पीताभ; केवलवृक्ष—वकुल; लांछन—नीलोत्पल; (श्वे०) अशोकवृक्ष (दि०) यक्ष—भृकुटि (श्वे० नंदिण (दि०); यक्षी—गांधार (श्वे०) चामुडी (दि०) चउँरीवारक (विजय राज) नि० स्थान स० शि० गर्भ आसोज वदी २ जन्म व तप आषाढ़ वदी १० केवल ज्ञान मगसिर सुदी ११ निर्वाण वैसाख वदी १४

२२. तीर्थंकर—नेमीनाथ; जन्मस्थान—सौरीपुर वा द्वारका; पिता—समुद्रविजय; माता—शिवादेवी; विमान—अपरा-जिता; वर्ण—कृष्णाभ; केवल वृक्ष—महावेणु वेतसा; लांछन-शंख, यक्ष-गोमेघ (श्वे०) सर्वाहण—(दि०) पुष्पयान दि०) यक्षी-अमा, अम्बिका—कुष्माणिडनी, चउँरीधारक उग्रसेन, नि० स्थान गिरिनार (रैवतक ; गर्भ कार्तिक सुदी ६ जन्म व तप श्रावण सुदी ६ केवल ज्ञान आसौज सुदी १ आषाढ़ सुदी ८

२३. तीर्थंकर—पार्श्वनाथ, जन्मस्थान—वाराणसी; पिता

अश्वसेन राजा; माता-वामादेवी,; विमान प्रणत देवलोक; वर्ण—नीलाभ; केवलवृक्ष—देवदारु या धातकी; लांछन—सर्प; यक्ष—पार्श्व (श्वे०) वा धरजेन्द्र (दि०) यक्षी-पद्मावती, चउँरीधारक—अजितराज; नि० स्थान स० शिखिर गर्भ वैसाख वदी २ जन्म व तप पो० वदी ११ केवल ज्ञान चैत्र वदी ४ श्रावण सुदी ७

२४. तीर्थंकर—महावीर वा वर्धमान; जन्मस्थान—कुंड़ग्राम पिता—सिद्धार्थराज या श्रेयांस वा यशस्वी; माता—त्रिशला; विदेहदत्ता वा प्रियकारिणी; विमान—प्रणत देवलोक; वर्ण—पीताभ; केवलवृक्ष-शाल; लाँछन—सिंह; यक्ष—मातंग; यक्षी—सिद्धयिका; चउँरीधारक—श्रेणिक या बिम्बसार नि० स्थान पावापुर गर्भ अषाढ़ सुदी ६ जन्म व तप चैत्र सुदी १३ केवल ज्ञान मगसिर वदी १० वैसाख सुदी १० निर्वाण कार्तिक वदी १५

२४ यक्ष या शासन देवताओं का विशद वर्णन

(जैनधर्म के अभ्युत्थान के साथ२ भारतियों का लोकविश्वास और साहित्यिक परंपरामें यक्ष लोगों का एक गोष्टीगत भावमें यहां अस्तित्व था। जैन विश्वासके मुताबिक इन्द्रदेव चौवीस तीर्थंकरों की सेवा के लिये २४ यक्षों को शासन देवता के स्वरूप नियुक्त करते हैं। प्रत्येक तीर्थंकरके दाहिने पार्श्व में यक्षमूर्ति की प्रतिष्ठाकी जाती है)

१ यक्ष (शासन देवता)-गोमुख, श्वेताबम्र संकेत-वरदामुद्रा जयमाला और कुठार दिगम्बर संकेत-मस्तकपर धर्मचक्र का प्रतिरूप, वाहन-वृक्ष (श्वे०), गज (दि०), तीर्थंकर—ॠषभदेव या आदिनाथ,

२. यक्ष (शासन देवता)—महाक्ष, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्मुख और अष्टबाहु, वरदा, गदा, जयमाला, पाश, निबु, अभय, अंकुश,

शक्ति, दिगम्बर संकेत-चतुर्मुख और अष्टबाहु, थालिआ, त्रिशुल, वाहन पद्म, अंकुश, खड्ग, यष्टि, कुठार वरदा, मुद्रा, गज, तीर्थंकर—अजितनाथ,

३. यक्ष (शासन देवता) त्रिमुख, श्वे० संकेत षड़बाहु, नकुल गदा, अभय मुद्रा, निबू, पुष्पहार और जयमाला, दिगम्बर संकेत-त्रिमुख; षड्बाहु; थलिया अंकुश; यष्टि; त्रिशुल; और क्षुद्र खड़ग; वाहन-मयूर, तीर्थंकर-संभवनाथ,

४. यक्ष (शासन देवता) यक्षेश्वर (दि०) नायक (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-निबु, जयमाला, नकुल और अंकुश दिगम्बर संकेत-खंड, धनुष ढाल और खड़ग, वाहन-गज, तीर्थङ्कर-अभिनंदननाथ,

५. यक्ष (शासन देवता) तुम्बरु श्वेताम्बर संकेत-वरदा, वर्च्छी, गदा और पाश, दिगम्बर संकेत-दो सांप, फल और वरदा मुद्रा वाहन-गरुड़, तीर्थंकर-सुमतिनाथ

६. यक्ष- (शासन देवता) -कुसुम (श्वे०) पुष्पयक्ष (दि०) श्वेताम्बर संकेत-चतुर्वाहु, फल, अभय मुद्रा, जयमाला और नकुल, दिगम्बर संकेत-चतुर्वाहु, वरदा मुद्रा-ढाल अभय मुद्रा- वर्च्छी, वाहन-कुठजसार, तीर्थंकर-पद्मप्रभ,

७. यक्ष (शासन देवता)- मातंग (श्वे०) या वरनंदी, श्वेताम्बर संकेत-विल्वफल, पाश, नेवला, और अकुश, दिगम्बर संकेत-यष्टि, वर्च्छी, स्वस्तिक और वैजयंत, वाहन-गज (श्वे) सिंह (दि०) तीर्थङ्कर-सुपार्श्वनाथ,

८. यक्ष (शासन देवता)-विजय (श्वे०) या श्याम (दि०) श्वेताम्बर संकेत—त्रिनेत्र थालिआ और गदा, दिगम्बर संकेत त्रिनेत्र, फल, जयमाला, कुठार और वरमुद्रा, वाहन—हंस, तीर्थङ्कर—चन्द्रप्रभ,

९. यक्ष (शासन देवता)—अजित श्वेताम्बर संकेत—निबुफल जयमाला, नेवला, और वर्च्छी, दिगम्बर संकेत–शक्ति, वरदा

मुद्रा, फल और जयमाला, वाहन कूर्म, तीर्थङ्कर–सुविधिनाथ या पुष्पदंत

१०. यक्ष (शासन देवता) ब्रह्मा, श्वेताम्बर, संकेत-चतुर्मुख, त्रिनेत्र, अष्टबाहु निंबुफल, गदा, पाश, अभय, नकुल, ऐश्वर्य सूचक, दण्ड, अंकुश, और जयमाला, दिगम्बर संकेत-चतुर्मुख त्रिनेत्र, अष्टबाहु, धनु, यष्टि, ढाल, खड्ग, और वरदा मुद्रा, वाहन-पद्म तीर्थङ्कर-शीतलनाथ

११. यक्ष (शासन देवता) ईश्वर (दि०) या यक्षेत (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत–त्रिनेत्र, चतुर्बाहु, नेवला, जयमाला, यष्टि और फल दिगम्बर संकेत–त्रिनेत्र,चतुर्बाहु त्रिशूल, यष्टि, जयमाला और फल, वाहन-वृषभ तीर्थंकर-श्रेयांसनाथ,

१२. यक्ष (शासन देवता)कुमार, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्बाहु, निंबु, शर, नकुल और धनु दिगम्बर संकेत-त्रिशिर, षड्हस्त, धनु, नकुल, फल, गदा और वर मुद्रा, वाहन-श्वेतहंस,तीर्थंकर-वासुपूज्य

१३. यक्ष (शासन देवता) सम्मुख (श्वे) या श्वेतम्मु (दि०) श्वेताम्बर संकेत-षड़ानन, द्वादशबाहु, फल, थालिया शर, खड्ग, पाश जयमाला, नकुल, चक्र, धंधन फल, अंकुश और अभय मुद्रा, दिगम्बर संकेत-चतुर्मुख, अष्टबाहु, कुठार, चक्र, तलवार,ढ़ाल और यष्टि आदि वाहन-मयूर.तीर्थंकर-विमलनाथ

१४. यक्ष(शासन देवता) पाताल, श्वेताम्बर सकेत त्रिमुख, षड़बाहु, पद्म, खड्ग, पाश, नकुल फल, और जयमाला, दिगम्बर संकेत-त्रिमुख ,षड़बाहु, अंकुश बर्च्छी, धनु, रज्जु, लंगल, फल और त्रिफला विशिष्ट सांपका एक चन्द्रातप, वाहन- सुसु तीर्थंकर अनंतजित या अनंतनाथ,

१५.यक्ष (शासन देवता) किन्नर श्वेताम्बर संकेत–त्रिमुख; षड़बाहु; निंबु; ऐश्वर्य सूचक; दण्ड; अभय; नकुल; पद्म और

जयमाला; दिगम्बर संकेत—त्रिमुख; षड्बाहु; चालिका; वज्र अंकुश; जयमाला और वरद मुद्रा; वाहन—कूर्म (श्वे०) मीन (दि०) तीर्थंकर—धर्मनाथ;

१६. यक्ष (शासन देवता)—गरुड़ (श्वे०) या; किंपुरुष (दि०) श्वेताम्बर संकेत—निबु; पद्म; नकुल और जयमाला; दिगंबर संकेत—सर्प; पाश और धनुष; वाहन; वराह (श्वे०) गज; (दि०) तीर्थंकर—शांतिनाथ;

१७. यक्ष (शासन देवता)—गन्धर्व; श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु वरद मुद्रा; पाश; निबु; अंकुश; दिगम्बर संकेत—सर्प; पाश; और धनुष; वाहन-विहगम; (दि०) हंस (श्वे०) तीर्थंकर कुंथनाथ

१८. यक्ष (शासन देवता)—यक्षेत (श्वे०) या खेन्द्र (दि०) श्वेताम्बर संकेत—षडानन द्वादशबाहु; निबु शर; खड्ग; गदा; पाश; अभय मुद्रा; नकुल; नकुल; धनु; फल; बरछी; अंकुश और जयमाला दिगम्बर संकेत—षडानन; द्वादशबाहु; वज्र; पाश; गदा; अंकुश; वरदा मुद्रा; फल; शर और पुष्पहार; वाहन—शम्बु (दि०) मयूर (श्वे०) तीर्थंकर—अरनाथ

१९. यक्ष (शासन देवता) कुबेर, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्मुख; अष्टबाहु, वरदा, कुठार बरछी; अभय; निबु; शक्ति, गदा और जयमाला; दिगम्बर संकेत—चतुर्मुख; अष्टबाहु; ढाल; धनु; यष्टि; पद्म; खड्ग; चालिका; पाश और वरदा मुद्रा; वाहन गज; तीर्थंकर—मल्लिनाथ;

२०. (शासन देवता) —वरुण; श्वेताम्बर संकेत—त्रिनेत्र; अष्टशिर; जटाजूट केश; अष्टबाहु; निबु; ऐरावत सूचक; दंड; शर, बरछी; नकुल; पद्म; धनुष; और कुठार; दिगम्बर संकेत—त्रिनेत्र; अष्टशिर; जटाजूट केश; चतुर्बाहु; ढाल; खड्गफल और वरदा मुद्रा; वाहन—वृषभ; तीर्थंकर-मुनिसुव्रत

२१. यक्ष (शासन देवता भृकुटी (श्वे) या गोमेद (दि०);

मुद्रा, शंख और मातिका, वाहन—लोहासन (दि०) पुरुष श्वे०
यक्षी या यक्ष, अजित बाला (श्वे०) या रोहिणी [दि०]

३. यक्षी या यक्ष—संभवनाथ, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, वरदा, अक्षमाला, पाश और अभय मुद्रा, दिगम्बर संकेत—षट्बाहु, चन्द्राकृति विशिष्ट कुठार, फल, खड्ग और वरदा, मुद्रा से सुशोभित, वाहन-मेष (श्वे०) मयूर (दि०) यक्षी—दुरितारि (श्वे०) या प्रज्ञप्ति (दि०)

४. यक्षी—अभिनन्दन नाथ, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, वरदा, पाश, सर्प, और अंकुश, दिगम्बर संकेत—चतुर्बाहु, सर्प पाश, अक्षमाला और फल, वाहन—हंस (दि०) पद्म (श्वे०) यक्षी—कालिका (श्वे०) वज्र शृंखला (दि०)

५. यक्षी—सुमतिनाथ श्वेताम्बर संकेत-चतुर्बाहु, वरदा, पाश सर्प, और अंकुश दिगम्बर संकेत—चतुर्बाहु, पाश अक्षमाला और फल, वाहन—हंस (दि०) पद्म (श्वे०) यक्षी—महाकाली (श्वे०) पुरुषदत्ता (दि०)

६. यक्षी—पद्मप्रभ, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, शारद, वीणा, धनु, और अभय, मुद्रा, दिगम्बर संकेत—चतुर्बाहु, खड्ग, वज्र, पद्म, और वरमुद्रा, वाहन—नर (श्वे०) पद्म (दि०) यक्षी—अच्युता (श्वे०) श्यामा (श्वे०) और मनोवेगा (दि०)

७. यक्षी—सुपार्श्वनाथ, श्वेताम्बर संकेत—वरदा, अक्षमाला, पाश, और अभयमुद्रा, दिगम्बर संकेत—त्रिशूल धनु, वरद और घंटी, वाहन—गज (श्वे०) वृषभ (दि०) यक्षी शान्ता (श्वे०) काली (दि०)

९. यक्षी—सुबुद्धिनाथ या पुष्प दन्त श्वेताम्बर संकेत-चर्तुबाहु, वरदा, जयमाला, कुंभ और अंकुश दिगंम्बर संकेत—चर्तुबाहु वज्र, गदा, फल और वरमुद्रा वाहन—वृषभ (श्वे०) कूर्म (दि) यक्षी—सुतारका (श्वे०) या माहाकाली (दि०)

१०. यक्षी शीतलनाथ, श्वेताम्बर संकेत—वरदा, पाश्र्व, फल और अंकुश, दिगम्बर संकेत—फल, वरमुद्रा, धनुष आदि. वाहन-पद्म(श्वे०) सुकर(दि०)यक्षी-अशोका(श्वे०) या मानवी (दि०)

११. यक्षी—शेयांशनाथ, श्वेताम्बर संकेस—वरदा. गदा, कुज और अंकुश, दिगम्बर संकेत—गदा, पद्म कुंज और वरदा मुद्रा, वाहन- केशरी (श्वे०) कृष्णसा(दि० यक्षी-शवित्सादेवी (श्वे०) या मानबो (श्वे०) गौरी (दि०)

१२. यक्षो—तसुपूज्य, श्वेताम्बर संकेत—चर्तुबाहु, शर, धनु ओर सर्प, दिगम्बर संकेत—गदा, पद्म युगल और वरदामुद्रा, वाहत—अश्व (श्वे०) कुंआ (दि०) यक्षी—चण्ज (श्वे०) या प्रचंडा (श्वे०) या गांधारी (दि०)

१३. यक्षी-विमलनाथ, श्वेताम्बर संकेत—चर्तुबाहु, शर, पाश, धनुष और सर्प, दिगम्बर संकेत—दो सर्प, और धनु शव, वाहन-पद्म (श्वे०) सर्प (दि०) यक्षी—विदिता (श्वे०) या विजया (श्वे०) या वैर्गत (दि०)

१४. कक्षो—अनंतजित या अनंतनाथ, श्वेताम्बर संकेत—चर्तुबाहु, खड्ग, पाश; वच्र्छा और अकुश, दिगम्बर संकेत—चतुर्वाहु, धनुष, शर, फल और वरमुद्रा, वाहन—पद्म (श्वे०) हंस (दि०) यक्षी—अंकुश (श्वे०) या अनंतमति (दि०)

१५. यक्षी—सम्भवनाथ, श्वेताम्बर संकेत- चतुर्वाहु, पद्म, युगल, अंकुश और अभय दिगम्बर षंकेत- चतुर्वाहु, पद्म युगल धनु वरद, अंकुश और शर, वाहन- अश्व (श्वे) मीन (श्वे०] (व्याघ्र (दि०) यक्षी—कन्दर्प (श्वे०] या पन्नगादेवी [श्वे]

वाहन–केशरी (श्वे०) यक्षी—अम्बिका या कुष्माण्डी (श्वे०) या आम्रा (दि०)

२३. यक्षी या यक्ष-पार्श्वनाथ, श्वेताम्बर (संकेत-पद्म पाश, फल और अंकुश, दिगम्बर संकेत (क) चतुर्वाहु होनेसे अंकुश, पद्म युगल (श्वे०) षड्वाहु होनेसे, पाश खड़ग, चक्र, वर्च्छा, वक्रचंद्र गदा और यष्टि (ग) अष्टवाहु होनेसे पाश आदि (घ) चतुर्विश वाहु होनेसे शंख, खड़ग, चक्र, वक्रचन्द्र, पद्म नीलनलिनी, धनुष, वर्च्छा, पाश, घंटी, कुशचास, शर, यष्टि, ढाल, कुठार, त्रिशूल, वज्र, पुष्पहार, फल, गदा, पत्र, वृंत, वरदामुद्रा आदि

२४. यक्षी–महावीर या वर्धमान, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्वाहु, पुस्तक, निंबु फल, अभय मुद्रा और पुस्तक, दिगम्बर सकेत-वरदामुद्रा और पुस्तक, वाहन- केशरो (श्वे०) (दि०) यक्षो सिद्धयिका

नवग्रह या ज्योतिष्क देवों का वर्णन

१. अंचल-पूर्व, ज्योतिष्कदेव-सूर्य, वाहन सप्ताश्व चालित थर श्वेताम्बर संकेत- पद्म युगल दिगम्बर संकेत- + +

२. अंचल—दक्षिण, पूर्व जोतिष्क-शुक्र, वाहन, सर्प (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-कुंभ दिगम्बर संकेन-त्रिरन्ग सूत्र, सर्प, पाश, और जपमाला

३. अंचल—दक्षिण, ज्योतिष्क देव-मंगल, वाहन-पृथ्वी (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत—मुतखनन यंत्र वरद, वर्च्छा, त्रिशूल, गदा. दिगम्बर संकेत- केवल वर्च्छा,

४. अंचल—दक्षिण; पश्चिम; ज्योतिष्कदेव-राहु; वाहन—केशरी (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-कुठार दिगम्बर सकेत-वैजयन्ती;

५. अंचल—पश्चिम; ज्योतिष्क देव-शनि; वाहन- कूर्म; श्वेताम्बर संकेत-कुठार; दिगम्बर संकेत-त्रिरन्ग सूत्र;

४. देवी—वज्रांकुश; वाहन-गज (श्वे०) विमान (दि०) श्वेताम्वर संकेत—खड़ग; वज्र; ढाल; बर्च्छी; वरद, निवु फल, अंकुश, दिगम्बर संकेत अंकुश; और वाद्य यंत्र सितार

५. देवी—अप्रतिचक्र (श्वे०) या जम्वुनदा (दि०) वाहन—गरुड़ (श्वे०), मयूर (दि०), श्वेताम्वर संकेत—चतुर्वाहुमें थाली; दिगम्वर संकेत—खड़ग और वर्च्छी;

६. देवी— पुरुपदत्ता—वाहन-महिप (श्वे०); मयूर (दि०) श्वेताम्वर संकेत—खढ़ग; ढाल; वरद और निवुफल, दिगम्वर संकेत—वज्र और पद्म

७. देवी—काली; वाहन—मृग (दि०); पद्म (श्वे०); श्वेताम्वर संकेत- द्विवाहु होनेसे वरद और गदाधारण चतुर्वाहु होनेसे जपमाला, गदा; वज्र और अभयमुद्रा; दिगम्वर संकेत—खड़ग और (यष्टि से हस्त प्रशोभित)

८. देवी—महाकाली; वाहन— नर (श्वे०); शव दि०); श्वेताम्वर संकेत—जपमाला; वज्र घंटी और अभय; दिगम्वर संकेत— पद्म

९, देवी—गौरी; वाहन— कुंभीर (श्वे०)(दि०); श्वेताम्वर संकेत—चतुर्वाहु; वरद; गदा; जपमाला; स्थल पद्म; दिगम्वर संकेत—पद्म

१०. देवी—गान्धारी; वाहन-पद्म (श्वे०) कूर्म (दि०); श्वेताम्वर संकेत-यष्टि; वज्र, वरद; अभय; मुद्रा, दिगम्वर संकेत—खड़ग और थाली ;

११. देवी—महा ज्वाला या मालिनी; वाहन—मार्जार (श्वे०) शुकर (श्वे०); महिष (दि०); श्वेताम्वर संकेत—वहु अस्त्रधारी; दिगम्वर संकेत—धनु; ढाल; खड़ग और थाली

१२. देवी— मानवी; वाहन-पद्म (श्वे०); शुकर (दि०); श्वेताम्बर संकेत—चतुर्वाहु; वरदा; जपमाला और वृक्षशाखा

तक रवर्तन होता है; कुठार; वरद, मोदक और अभय, दिगम्बर संकेत-अज्ञात
४. श्री या लक्ष्मी (धनदेवी) वाहन-गज (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत— नलिनी; दिगम्बर संकेत-चतुर्वाहु; पुष्प और पद्म
५. देव— शांतिदेव; वाहन-पद्म (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत—चतुर्वाहु; वरद; जपमाला, कमंडलु और कलस दिगम्बर संकेत-अज्ञात। इस प्रकार जैनकलामें आयोजित देवी देवताओंका विवरण है। अब हम यहाँ पर जैनकला पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करना भी आवश्यक समझते हैं। निस्सन्देह भारतीय संस्कृतिके दीर्घ इतिहासमें जैनकला और संस्कृति एक अविच्छेद्य अङ्ग हैं। लिखित किताव छोड़कर जितने तरह के स्थापत्य और भास्कर्य केवीच जैन कला व संस्कृति का परिचय मिलता है, उसे विश्लेषण करने से जैनधर्मके वारेमें वहुतसे तथ्य मालूम होजाते हैं। कलाहीं एक तरहकी सार्वजनिक भाषा है। जिसके माध्यममें जनसाधारण धर्म के वारे में वहुत बातें जान सकते हैं। इन विविधि प्रकारके कला कार्य विविध धर्मावलम्वी बहुतसे अमीरों और राजाओं की अनुकूलतासे रचित होने के कारण और स्पष्ट न होनेसे जैन संस्कृति और दर्शन के बारे में कोई वात वताना आसान नहीं हो सकती।

भारत के जिन स्थानों में जैन धर्मने प्रसार लाभ किया था उनमें से विन्ध्य पहाड़ के उत्तर भाग या दाक्षिणात्य के कुछ जगह समग्र मध्य प्रदेश और ओड़िसा प्रधान है। आसाम, वर्मा, काशमीर, नेपाल, भूटान, तिव्वत और कच्छ वगैरह स्थानों नें जैन संस्कृति का कोई उल्लेख योग्य स्मारक नहीं है।

समाज में धर्म को अमर और जनप्रिय करने के लिए शिल्पियोंने जो उल्लेखनीय सहयोग दिया और कार्य किया है वह सचमुच चिरस्मरणीय रहेगा शिल्पियों ने अपनी सब तरह की

कलासृष्ठि के द्वारा प्रत्येक धर्मकी जो भावपूर्ण अवतारणा की है वह इस युग के ऐतिहासिकों के लिए इतिहास लेखन के सारे उपादान देती है। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के रूपायन के बीच एसा एक अटूट ऐक्य और पद्धति का एका है, जिस से एक से दुसरे को जुदा कर देने के लिए सीमा रेखा काटना विलकुल आसान नहीं है। जिस शिल्पीने जैनमूर्ति या चैत्य बनाया है, उसीने कहीं बौद्ध धर्म की अनेक प्रतिमायें और विहारो का निर्माण किया है, क्योंकि दोनों धर्म परस्पर एक साथ प्रचारित और प्रसारित होने से रचित शिल्प कला में कला की पद्धति प्राय: एक ही तरह की देखने को मिलती है।

प्राङ्-ऐतिहासिक संस्कृति-पीठों में जैन धर्म के स्मारक देखने को न मिलने पर भी मोहनजोदारो से मिले हुए चिन्ता मग्न नग्न पुरुष-मूर्तियों को जैनतीर्थङ्कर कहा जा सकता है। हड़प्पा से मिले हुए नग्न पुरुष मूर्ति के साथ अङ्ग गठन से विहार प्रदेश के लाहोनिपुर प्रान्त से मिले हुए नग्न जैन मूर्ति का मेल एसा अधिक है कि हड़प्पा के प्राचीन मूर्ति को जैन कला कहकर ही ग्रहण किया जा सकता है। इस विषय में इतना अनुमान किया जा सकता है कि बहुत प्राचीनकाल से एतिहासिक युग में भारतीय कला धीरे धीरे प्रवेश कर देश काल और सामयिक सामाजिक वेष्टनी के बीच नए नए रूप में प्रकाशित हुई है। इस रूपायन में अलग अलग धर्म और उसका प्रतीक और प्रतिमा का विभिन्न परिधान, आयुध और वाहन वगैरह से जो सूचना मिलती है वह एक निरवच्छिन्न ऐक्य का निर्देश देती है। जैन और बौद्ध धर्म के पृष्ठ पोषक तत्कालीन धनी और राजाओं के निर्देश से इस कला का प्रकाश न होने से आज हमें कोई एतिहासिक प्रमाण विभिन्न धर्म के मिल नहीं सकते हैं।"

मौर्य युग में जो सब जैन स्थापत्य और भास्कर्य के रूपायन देखने को मिलते हैं, उनमें से विहार के वरावर और नागार्जुन पहाड़ में बनी हुई कई गुफायें (गुहा) उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिकों ने प्रमाणित किया है कि इन गुफाओं को तत्कालीन मौर्य राजाओं ने खुदवाया था। उनके समय में और कई जैन मन्दिर तैयार हुए थे।

सुङ्ग युग में जैनकीर्ति रहने वाले उल्लेख योग्य स्थानों में ओड़िसा की खंडगिरि गुफा और उदयगिरि गुफा सर्व प्रधान हैं। चेदिवंशज खारवेल के अनुशासन प्रशस्ति यहां खोदित हुई हैं। खृीष्ट पूर्व पहली सती में यह अनुशासन खोदित होने की बात, खोदित लिपि से प्रमाणित हैं। सम्राट खारवेल नन्दराजा द्वारा अपहृत 'जैन' मूर्तिको मगध अधिकार करके फिर ले आए थे। राजा खुद तीर्थकरों के प्रति अनुरक्त रहने से वे और उनकी रानी दोनों ने खुशी के साथ इन सन्यासियों के विश्राम के लिए खंडगिरि की गुफायें खोदित कराई थीं। इस गुफा की निर्माण रीति चैत्य निर्माण रीति से अलग है छोटे छोटे चैत्य में रहने वाले विशाल कक्ष (Hall) यहाँ देखने को नहीं मिलता। हाथी गुफा में खोदे हुए एवं मंचपुरी गुफा के नीचे के महल में होने वाले भास्कर्य दुसरी जगह होने वाले स्वल्प स्फीति भास्कर्य से कुछ अनुन्नत होने पर भी उसकी स्वाधीन गति और रचना की ओर से यह वरदूत भास्कर्य से अधिक दृढ़ता (Force) के साथ खोदा हुआ है, यह अच्छी तरह जान पड़ता है।

ई० पू० पहली शताब्दी तक अनंत गुफा, रानी गुफा और गणेश गुफाओं को भास्कर्य में जैन धर्म की सूचना उल्लेख योग्य है। अनन्त गुफा में चार घोड़े लगे हुए, गाड़ी में जो मूर्ति देखने को मिलती है और जिसे सूर्य देव नाम से पुकारते

है, फिर सत्य वृक्ष के चारों ओर रहने वाली वेष्टनी और दूसरी मूर्तियां बुद्ध जन्म और गजलक्ष्मी मालुम होने पर भी यह जैन धर्म की पद्म श्री है। यह वाद को सिद्धान्त किया गया है। वरदूत भाष्कर्य पुंज में रहने वाले 'शिरिमा' देवता के साथ इसका सामजस्य और ऐक्य मालुम होता है।

जैन 'कल्पसूत्र' के १४ स्वप्नों एवं दिगम्बरों के १६ स्वप्नों में से यह एक है। तीन फनवाली जो एकदुसरेसे लपेटेहुए सर्पमूर्ति अनंतगुफा के द्वार के खिलानके ऊपर दिखाई गई हैं। जिन पार्श्वनाथ के साथ कलिंगका नाता वहुतसे ग्रन्थोंमें गिनाया गया है यही कारण है कि उनके प्रतीककी तरह मानो शिल्पिने सर्पमूर्ति अंकन करके इस उपाख्यानको अमरकर दिया है। यह सर्पमूर्ति और नाग नागिन मूर्ति परवर्ती कालमें वनाए हुये वहुतसे मंदिरोंके संम्मुख द्वारपर देखनेको मिलते हैं। मार्शल के मतमें यह गुफा ई० पू० प्रथम शताब्दी में निर्मित हुई थी। गुफा निर्माण स्थापत्य की दृष्टि से (Cave architecture) ये सब देशों में सर्व प्रथम स्थापत्य है। रानी गुफा दूसरी गुफाओंसे अधिक प्रशस्त और उन्नत प्रकार की है। जिस गुफाके खिलान के ऊपर भाग में और दीवारों में खोदे हुये मंडल कलाका प्राचुर्य देखने को मिलता है, सिर्फ इतना ही नहीं इस गुफा के ऊपर भाग में स्वल्प स्पूति भास्कर्य के वीच एक चमत्कार शिकारी दृश्य देखने को मिलता है। कई शिल्प रसिकों ने इस के सौंदर्य पर मुग्ध होकर इस को भित्ति चित्र कहा है। अवश्य ही आजकल इस स्वल्प स्पूति भास्कर्य का ऊपर भाग में कुछ रक्ताभ वर्ण का रंग देखने को मिलता है। यह रंग कैसे वहां दृष्ट होता है, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। उस दृश्यमें पंख वाला एक मृग और कई मृग शावक भी दिखाये गये हैं, उसके पास एक पेड़ है जिस पर पत्तोंके अतिरिक्त

१०. उपसंहार

"Lord Mahāvira, like Rishabha, the First Tirthankara, preached his religion in Kalinga".
—(Harivansa-purana).

जैन शास्त्रीय विवरण एवं उड़ियाके इतिहास और संस्कृति के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो गया है कि उड़ीसा के जन जीवन में जैनधर्म का प्रभाव एक अत्यन्त प्राचीनकाल से रहा। जैन 'हरिवंश—पुराण' से ज्ञात होता है कि अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर वर्द्धमान के वहुत पहले से जैनधर्म कलिङ्ग में प्रचलित था। स्वयं प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवने आकर उड़िसामें धर्म का प्रचार किया था। प्रसिद्ध जैन तीर्थ कोटिशिला भी उड़ीसा के अञ्चल में ही कहीं छिपा हुआ है ऐसी जैनों की मान्यता है।

प्राचीन काल में जैन धर्म उडोसा का राष्ट्रधर्म था। कलिङ्ग के राजा भी जैनी थे और प्रजा भी तीर्थङ्करों की उपासना करती थी। मध्यकालतक जैनधर्म का अहिंसाध्वज पूर्णरूपमें कलिङ्ग में फहराता रहा। जैन राजाओं और धनिकों ने उड़ीसा की भव्यभूमि को मनोहारी मँदिरों और अद्भुत गुफाओं से सुसज्जित कर दिया! जैन मूर्तियों की वीतरागता ने कलिङ्ग वासियोंके हृदयों पर एक छत्र अधिकार कर लिया था। यहां तक कि ऋषभ भगवान की मूर्ति सारे देश की गौरव निधि वन गई और 'कलिङ्ग जिन' के नाम से प्रसिद्ध

परिशिष्ट सं० १

खण्डगिरि की ब्रह्मीलिपि

खण्डगिर और उदयगिरि की ब्राह्मीलिपि

चिन्ह वर्द्ध मंगल[1] चिन्ह स्वस्तिक[2] नमो अरहंतानं[3] नमो सव सिधानं[4] एरेण[5] महाराजेन महामेघवाहनेन चेत[6] राजवंस वधनेन पसथसुभ-लखनेन चतुरंत (रखण)[7] गुणउपेतेन[8] कलिगां धिपतिना सिरि खारवेलेन पंदरस वसानि सिरि कडार सरि-खता किड़ताकुमार किड़िका ततो लेख रूप–गणना-ववहार विधि विसारदेन सवविजा वदातेन नववसानि योवराजम् व[9] सामितम् संपुण चतुवीसतिवसे तदानि वधमान सेसयो जनाभि-जयो ततिये कलिगराजवंसे[10] पुरिसयुगे महाराजा भिसेचनम्[11] पापुनाति   चिन्ह नन्दिपद[12]

.१ वध मंगल
२. स्वस्तिक
३. और ४. जैन पाठ्यके पांच नमस्कारों में से ये दो अन्यतम हैं,
5. Dr. B. M. Barua —'ऐरेण'
6. Dr. D. C. Sircar —'चेति'
7. Dr. D. C. Sircar —'लुठण,
8. Dr. D. C. Sircar & K.P. Jayaswal—'उपितेन'
9. D. C. Sircar—'च'
10. Dr. B. M. Barua—'राजवंशे'
11. K. P. Jayaswal—'माहा'—
१२. 'नन्दिपद'

-ससत[२७] ओघाटितम् तनुमूलियवाटाप णाड़ि नगर पवेसयति सत-सहसेहि च खनापयति प्रामसितो च अटेवसे राजसिरि[२८]संद-सयंतो सद-कर वण अनुगह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोर-जानपदं सतमे च [२९]वसं[३०]असि-छत-वज-रव-रखि-तुरंग-सत-घटानि सदति संदंसनं सद-मंगलानि कारयति सतसह सेहि[३१]।

अठमे च[३२]वसे महता[३३]सेनाय मवुरं अनुपणे । गोरवगरि घातापयिता राजगहान पपोंड़ापयति[३४]एनिनं च कंम पदान[३५] पनादेन-संभीत-सेन-वाहने विपमुचितु मवुरं अपयातो यवनराज[३६] सवघर[३७]वासिनं च मदगहतिनं च म पान भोजन च पान भोजन च सदराज भिकान च। सवगह पतिकान च गव ब्राह्मणां न च पान भोजन ददाति। कलिग जिन[३८]पलवभार

---

27. Indraji और Jayaswal—'तिदससतम्' Barua और Sircar—'तिवसनत'

28. D. C. Sircar—'राजनेयं'

29. D. C. Sircar—'सतमं'

30. B. M. Barua—'वसे'

31. D. C. Sircar—इस पंक्ति का अलग पाठ किया है और उनका पाठ अच्छा है।

३२. Prinsep—"च" पढ़ा ही नहीं है।

३३. Barua—'महति सेनाय'

३४. Prinsep—राजगढम् उपपीड़ापयति'

Indraji राजगह नताम् पीतापयति'

Jayaswal—'राजगहम्-उपपीतापयति'

Sircar 'राजगहं उपपीतापयति'

३५. Jayaswal—'कंमापदान'

३६. B. M. Barua—'येवन उदो'

Jayaswal—'यवन राज'

३७. Jayaswal दिमित' या 'जिमिति'.

३८. Barua—'कलिग याति'

घतो कलिंग आनेति हयगज-सेन वाहन-सह सेहि अंग—मगध वासिनं[४९] च पादे वंदापयति । वीथि—चतर—पलिखानि गोपुरानि[५०] सिहरानि निवेसयति । सुतवासुको[५१] रतन पेसयंति[५२] अभुत मछरियं च हथी निवास[५३] परिहरंति[५४] मिग-हय-हथी उपानामयंति[५५] पंड राजा विवधाभरणानिसुता-मणि गतनानि आहरापयति इध सत-सहासानि सिनो वसो कारेति तेरसमे च वसे सुभावत विजयने कुमारो पवते अरहणे परिनिवसतो हि कायनिसी दियाय राजभतकेहि राजभातिहि राजनीतिहि राज पुतेहि राजमहिषि खारवेल सिरिना सत वस लेण सहकारापितम्[५६]

सकति समता[५७] सुविहितानं च सवदिसानं[५८] अननं तापस-इसिन संपियनं[५९] अरहत निशी दिया[६०] समीपे पभारे वराकर समुथापिताहि अनेक योजनाहि ताहि पनति साहि सत सह सेहि-सिनाहि सिनथंभानि च चेतिया निच कारापयति पटलिक चतरे

---

४९. Sircar—'अंग मगध वसु'

५०. K. P. Jayaswal—'तं जठर लिखिलवरानि'
D. C. Sircar—'कतुजठर लिखिल'

५१. D. C. Sircar—'सतवसिकन'

५२. D. C. Sircar—'परिहारोहि'

५३. Barua—'हथीस पसदम्'

५४. D. C. Sircar—'परिहर'

५५. D. C. Sircar—'रतनमाणिक'

५६. D. C. Sircar='ने इसका अलग पाठ किया है-'तेरसमे च वसे सुपवत विजय चके अरहतेहि पखिन ससिततेहि कायनिसि दियायया पु जाव केहि राजभितिक चिनवतानि वासीसितानि पुजानु रत-उवासग-खारवेल सिरिना जावदेह सयिना परिखाता ।

५७. Jayaswal—'सुकति'

५८. Barua—'सतदिसानं'

च वेडरिय-गभे थंभे पटि ठापयति पनतरिय सतसह सेहि मुरिय कल वोच्छिन[61] चेचयति अध सतिक तिरिय[62]उपादयति खेम-राजस वढ़राजस[63] इदराजस[64]धमराज पसंतो सनंतो अनुभवंतो कलाणानि गुण विशेष कुशलो सवपासांड़पुजको सव देवायतन संकार कारको अपतिहत चको वाहन वलो चकघरो गुतचको पवतचको राजसिवसु-कुलविनिसितो[65] महाविजयो राजा खारवेल सिरि (चिन्ह वृक्ष चैत्य[66])

खंडगिरि और उदयगिरि के दूसरे शिलालेख

(१) वैकुण्ठपुरी गुफा—

अरहतम् पसादायम्[67] कालिगानम्[68] समनानाम् लेणम् कारितम् राजिनो ललाकस हथिसहस पपोतस[69] घुतुना कलिग चकवति नो सिरि खारवेलस अगमहिमहिसना कारितम्।

२ मंचपुरी गुफा—

एरस[70] महाराजस कलिगाधिपतिनो महामेघवाहनस

---

५९. Baru—'यतिनं तापसइसिनं लेणं कारयति'
६०. Indraji—'निसिदिय'
६१. D. C. Sircar–'मुखिय कल'
६२. D. C. Sircar–'अंगतक तुरियं'
६३. Barua–'वधराजस'
६४. Sircar–'भिखुराजस'
६५. Barua–'राजिसि-वंश-कुल-विनिसितं
६६. वृक्षचैत्य'
६७. Barua—'पसादानम्'
Sircar—'पसादाय'
६८. Caunningham—'विनगानम्'
६९ Barua—'हथिसाहसं पनातस्'
७०. R. D. Banerjee—'अरस'
D. C. Sircar—'एरस'

कदंप गिरिनं[७१] लेणम्

(३) कुमार वटुकस लेणम्[७२]

(४) छोटा हाथी गुफा—

अगि——ख......पलेणम्[७३]

अगि......ख......पलेणम्[७३]

(५) सर्प गुफा—

चुलकमस कोठाजेय च

(६) कंमस हलखिनाय च पसादो

(७) हरिदास गुफा—

चुलकमस पसादो कोठाजेया च

(८) व्याघ्र गुफा—

नगर अखदंस[७४]

सभूतिनो लेणम्[७५]

(९) जम्बेश्वर गुफा—

महामदास वारियाय नाकियस लेणम्

(१०) तत्व गुफा-(२)-

पादमुलिकस कुसुमस लेणम् कि[७६]

(११) अनन्त गुफा—

...दोहद समणानम् लेणम्[७७]

(१२)..........कोठाजेया.........

---

७१. Sircar—'वकदेप गिरिनं R. D. Banerjee—कुंदगिरि'

७२. Rajendra L. Mitra—'लेणम्'

७३. R. D. Banerjee—'के इस पाठ को B. M. Barua ने संपूर्ण काल्पनिक बताया है।

७४. B. M. Barua—'नगर अखदंसस सुतिनोलेणम्

७५. Prinsep और R. L. Mitra ने गलती से 'लोणम्' पढ़ा था।

७६. B. M. Barua—'पादमुलिकस कुसुमस लेणानि'

७७. B. M. Barua—'समाणानम्-लेणम्

(१३) तत्त्वगुफा—(१)-

रीपुतसकया......

खण्डगिरि और उदयगिरि के ये शिलालेख पुरानी ब्राह्मी-लिपि में लिखे हैं। ये लेख ईसा के जन्म से पहले पहली सदी के अन्त में या बाद ही लिखे गये थे, क्योंकि ऐतिहासिकोंने खारवेलके हाथीगुफा वाले शिलालेख की नायनिका के नाना-घाट वाले शिलालेख के साथ तुलना करके बताया है कि हाथी-गुफा का शिलालेख नानाघाट के शिलालेख के बाद का है। डा० दिनेशचन्द्र सरकार के मतमें नानाघाट का शिलालेख ईसवी पहली सदी के मध्यभाग का है। अतः हमें इस पर विश्वास रखना चाहिये कि हाथीगुफा तथा खण्डगिरि और उदयगिरि के शिलालेख ईसा के पहले पहली सदी के अन्त के या ईस्वी पहली सदी के हैं।

शिलालेखों की भाषा पालीभाषा से बहुत मिलती-जुलती है। असल में कुछ खास शब्दों को छोड़कर शेष शब्द पाली के हैं। आमतौर पर इन शिलालेखों की भाषा पर अर्द्धमागधी का प्रभाव अप्रतिहतन रूपसे है। अशोकके गिरनार के शिलालेखों के पाठसे स्पष्ट जान पड़ता हैं कि वह पाली और किसी पश्चिम भारतीय भाषा का मिश्रण है। उसी तरह पाली के साथ हाथीगुफा के शिलालेख की समता का विचार करके इसे कलिंग की व्यहृत प्राकृत भाषा कहना अनुचित नहीं होगा। यहां एक सवाल आ सकता है कि पाली मुख्यतया बौद्धों की भाषा है। खण्डगिरि तथा उदयगिरि के जैन शिलालेखों पर इसका असर हुआ कैसे ? इसके उत्तर में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। तो भी यह स्वाभाविक और सम्भव है कि पश्चिम भारतीय किसी जैन उपासक से या बौद्धधर्म का त्याग करके जैन धर्म को अपनायें हुए किसी संन्यासी द्वारा खण्डगिरि

तथा उदयगिरि के शिलालेखों की रचना की गयी हो जिससे पाली भाषाके साथ इन लेखोंकी भाषाकी इतनी समता है। अथवा गुफाओं में पाली भाषा रचित प्रशस्तियां लिखने का भार किसी जैन सन्यासी पर था और वह अर्द्धमागधीके प्रभावसे प्रभावित था

उस जमाने में कलिंग की बोलचाल की भाषा का स्वरूप वना सम्भव नहीं है।

यद्यपि हाथीगुफा के तथा दूसरे शिलालेख गद्यमय है, फिर भी उन लेखों का ढंग सावलील है और उन में काव्यिक उपादान भरपूर है। चक्रवर्त्ती खारवेल और उनकी महारानी के शिलालेखोंका वहुत सा भाग काव्यरीति लिखे हैं। इस काव्य रीति की योजना के कारण खण्डगिरि तथा उदयगिरि के शिलालेख इतने आकर्षक वन गये हैं।

परिशिष्ट सं० २

ओडिसा में जैनों का निदर्शन *

वालेश्वर जिल्ले में जुलाहों की संख्या ५६०००, आगे ये वहुत अच्छा कपड़ा वुनते थे; लेकिन विलायत से कपड़े आजाने के कारण इनका व्योपार नष्ट हो गया और वुनाई का काम छोड़कर ये लोग किसान मजदूरों का काम करने लगे, इनमें से जिनको अखिनी और खीरिआ चंती कहा जाता है, वे पहले बंगाल से वालेश्वर को पतले धागे की वुनाई सीखने आये थे। मानभूम गजेटियर से मालूम होता है कि सराक लोगों के भीतर अखिनी जातिके जुलाहे भी हैं। उससे मालूम होता है कि वालेश्वर की अखिनी जातिके जुलाहे पुराने जमाने में श्रावक थे और इनका धर्म जैन था। वालेश्वर जिलेमें अघोरी

* प्राचीन जैन स्मारक (वंग, विहार, ओड़िसा) लेखक—धर्म दिवाकर सीतल प्रसाद जैन ग्रन्थ से संग्रहित। जैन पुस्तकालय, सुरत।

जाति के कई लोग हैं, वे उग्र क्षत्रिय कहलाते हैं। वे व्योपार वाणिज्य करते थे। अनुमित होता है कि शायद वे एकसमय अग्रवाल थे।

सुवर्ण रेखा नदी के ऊपर वालिआपाल से सात मील पूर्व करतसाल गांव है। वहाँ करट राजाके प्राचीन किले मौजूद है।

सिंहभूम जिल्ला

वेंगाल गेजेटियर ई० १६१० vol. I No 20 सिहभूम-छोटा-नागपुरके दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। क्षेत्रफल-३८६१ वर्गमील लोक संख्या—६१३५७६, पूर्व में मेदिनीपूर, दक्षिणमें मयूर भंज, पश्चिममें गांगपुर और राँचि तथा उत्तरमें राँची और मानभूम, वामनघाटी प्रान्त (वारहवीं सदी) ताम्रलेख से मालूम होता है कि मयूर भंज के भंज वंशीय राजाओं ने श्रावकों को बहुत ग्राम दिये थे उक्त वंश के संस्थापक वीरभद्र एककरोड साधुओं के गुरू थे। (वेंगाल जर्नल ए०, एस०, ई० १८७१, पृ० १६१-६२) ये जैन थे। वहां के तांवा की खाणि में इस स्थानके श्रावक काम करते थे।

वहां के पहाड़, घाटी, घन जंगल और नजदिक गांव में वहुत-सी प्राचीन कीर्तियां अव भी मौजूद हैं। यह अंचल श्रावकों के अधीन में था।

मेजर टिकलने लिखा हैं (१८४०) सिंहभूम श्रावकों के हाथ में था। लेकिन अव नहीं है। तव उन की संख्या औरों से कहीं अधिक थी। उनके देशका नाम था शिखर भूमि और पांचेत। उनको वड़ी तकलीफ देकर निकाल दिया गया है (जर्नल ए० एस० वेंगाल, १८४०, सं०—६८६)

कर्णेल ड़ालटनने वेंगाल एथनोलोजीमें लिखा है, सिंहभूमके कई हिस्सा एक ऐसे दल के हाथमें थे कि जो मानभूम में अपने प्राचीन स्मारक छोड़गये हैं। वस्तुतः वहाँ बहुत पुराने लोग रहा

करते थे। उनको श्रावक या जैन कहा जाता था। अब भी कोलहनको 'हो' जाति के लोग कई तालावों को 'सरावक' (श्रावक) सरोवर कहते हैं।

श्रावक या गृहस्थ जैन लोगों ने जंगल के भीतर तांवे की खाने ढूंढ निकाल कर उनमें अपनी सारी शक्ति तथा समय को विता दिया है। (A. S. B. 1869. P. 179-5) मानभूम का जैन मन्दिर १४ वीं या १५ वीं सदी का परवर्ती नहीं है। अतः उस समय के पहले वहां जैन धर्म का प्रवेश करना संभव है।

वेनु सागर में कई प्राचीन (सातवीं सदी के) जैन मंदिर हैं। एक वौद्धमूर्ति और एक जैनमूर्ति भी है। यह वेनुसागर के राजा कृष्ण के पुत्र 'वेनु' के द्वारा खोदित हैं। कोलहन–यहां के प्राचीन अधिवासियों ने वहुत तालव खुदवाए थे।

रुआम—धाल भूमि के महुलिया ग्राम से दक्षिण पश्चिम के दो मील दूर पर कई स्थानों मै श्रावकों की वसति रहने का प्रमाण मिलता है।

'शिक्षा' (वांकीपुर ता० ८–५–१९२२) पत्रिका से मालूम होता है कि 'हा' और भूयां जाति के अलावा दूसरे जाति के लोगोंका यहां (सिह भूमि) आना ३०० साल से अधिक नहीं है। सौ साल के पहले सिह भूमि के वहुत से स्थानों में खासकर पोड़ाहाट में वहुत जैन लोग थे।

उन्हें वहाँ के आदिम निवासि लोग 'सोराख' (सराओगी) कहते है। उस समय का प्राचीन मन्दिर, मूर्ति, गुहा, पुष्करिणी आदि का अवशेष देखकर मालूम होता है कि वे ऐश्वर्यशाली और स्वाधीन थे। वहां मिट्टी के भीतर से रुपए, मुहरें, चित्रित टूटा हुआ कांच, चुड़ियां और मूल्यवान पत्थर की मालायें मिलती हैं।

हांसी, वुण्डु, मोत, हुरुण्डी, हेउलसाहि, नुआडिह, मोड़, नौडह आदि ग्राम और विभिन्न स्थानों में प्राचीन जैनमूर्ति मन्दिर और सरोवर देखने को मिलते हैं। मूर्तियों में वहुत सी पार्श्वनाथ की हैं। हुरुण्डि मे उषभ देव की एक मूर्ति भी है अब उसीं मूर्ति को वासुदेव की मूर्ति मानकर लोग उसकी पूजा करते थे। तैल और सिन्दूर से. रंगते थे। नआडिह के श्रावक लोग जनेऊ लेते हैं और पार्श्वनाथ की पूजा भी करते है। ये महापात्र, पात्र, दृत्त, सान्तरा, वर्धन, महात्र, अहिवुधि, सामग्री, देवता, प्रमाणिक, आचार्य, वेहेरा, दास, साधु पुष्टि, महात, मोहता, मण्डल, वैशाख, राउत, नायक, निशंक, मौधुरी मुदी, सेनापति, उच्घ, नाहक आदि भिन्न भिन्न संज्ञाधारी हैं। इनके गोत्र चार प्रकार के होते हैं—अनन्त देव, क्षेमदेव, कश्यप और कृष्ण देव।

सराक और रङ्गणी जुलाहें के आपस मे विवाह का सम्वन्ध नहीं हो सकता, ये खुद खेती का काम नहीं करते। उनके पुरोहित भी नहीं है। रङ्गणी जुलाहे लोग ब्राह्मणों के हाथसे पानी नहीं पीते हैं। सराक लोग डिम्विरी आदि फल में कीड़ा रहने के कारण उने नहीं खाते हैं और प्याज गोभी और आलू भी नहीं खाते हैं। ये खण्डगिरि को आते हैं। विवाह कांड और शुद्धि क्रिया नामक दो ग्रन्थ उनके पास हैं। उस से ये पुरोहित की सहायता के विना वैवाहिक संस्कार कर लेते है।

कटकजिला

आसिया पहाड़—छतिया पहाड़, चांदोल, जाजपुर, रत्नगिरि, उदयगिरि (जाजपुर) आदि स्थानों में जैनमूर्तिथां हैं। ओसिया पहाड़ को चतुरावोट भी कहते हैं। जाजपुर के अखंडेश्वर मन्दिर में अन्य मूर्तियों के भीतर एक छोटी सीं जैनमूर्ति

उपस्थित है। कटक जिले की सिमिरिया, बड़म्बा, धोबी और पुरी जिले के पिपल थाना में सराक जुलाहे रहते हैं।

कोरापुर जिलामें जैनमूर्ति*

भैरव सिंहपुर-जयपुर सबडिवीजन का एक गांव- पहाड़ के नीचे-२००० फुट ऊँचाई पर। लोक संख्या ११८१ (१०८१ सर्वोगी)

एक समय यह गांव जैनधर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यहां बहुत जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं। कई एक फुट, कई पांच फुट और कोई मूर्ति एक फुट से छोटी होगी, यहां ऋषभ नाथ की एक अतीव मूर्ति है Steatite पत्थर की। अभी गांव के लोग इसमें कुल्हाड़ी आदि में धार देते हैं यहां एक शिव मंदिर है। यहां शिव मन्दिर की भीतके भीतर बहुत-सी जैन मूर्तियां रह गयीं है। अब यहां ब्राह्मणों की बसति है।

नंदपुर में कई जैनमूर्तियां दिखायी जाती हैं। परन्तु उस समय किस किस जातियों के लोग जैन थे, उसका प्रमाण नहीं मिलता। [पृष्ट २२ कोरापुर जिला गेजेटियर १९४५]।

परिशिष्ट ३

उड़ीसा के जैनी और खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफायें

उड़ीसा में अब जैन नगण्य हैं। कटक के चौधुरी के वंश धरों का कहना है कि मंजिनाथ दिगम्बर जैन थे। वे नागपुर से आए थे। यहां जैनों के विवाह और शुद्धि क्रिया किसी पुरोहित द्वारा सम्पन्न नहीं होती जैन अपने में से किसी एक वृद्ध पण्डित से इस कार्य को सम्पन्न कराते हैं। हिन्दू या ब्राह्मणों में जिस तरह 'कर्णमन्त्र' पाते हैं उसी तरह यहां के जैन लोग नहीं करते। इस जातिके लोग निर्ग्रन्थ गुरुसे दीक्षा ग्रहण करते हैं। यहांके जैन 'नवतिलक' लगाते हैं। पूरे हुए श्रावकोंका ग्यारह

---

*कोरापुर जिला गजेटियर-१९४५-पृष्ठा-१४९

दिन में ये शुद्ध होते और तेरह दिन वाद श्राद्ध करते हैं। प्रथम श्राद्ध के वाद फिर मृत व्यक्तिका वार्षिक श्राद्ध नहीं करते हैं।

उड़ीसा के जैन अन्य जैनों की तरह केवल निरामिश खाद्य खाते हैं। मद्य मांस मधु हर किस्म के मूल तरह २ के उदम्बर और २२ प्रकार के दुसरे अभक्ष्य खाद्य नहीं खाते।

माघ सप्तमी के दिन खंडगिरि जैन मन्दिर के तीर्थकरों को 'खंड खीर' भोग लगता है। दूध अरूआ चावल और खांड आदि मिलाकर 'खंडखीर' तैयार होता है। कहते हैं जो आदमी माघ सप्तमी के दिन कोणार्क के चन्द्रभाजा में स्नान कर, पुरी जगन्नाथ दर्शन के वाद खंडगिरी जाकर 'खंडखीर' भोग खाएगा, वह स्वदेह स्वर्ग यात्रा करेगा।

खंडगिरि और उदयगिरि के पहाड़ में निम्नलिखित गुफा समूह है:

खंडगिरि :—	उदयगिरि
१. तोता गुफा (१)	१. राणी हंसपुर
२. तोता गुफा (२)	२-३. वाजादार गुफा
३. खोला गुफा	४. छोटा हाथी गुफा
४. जेंतुलि गुफा	५. अलकापुरी
५. खंडगिरि	६. जय विजय
६. धानवर	७. ठाकुरानी
७, नवमुनि	८. पणस
८. वार भुंजा	९. पातालपुरी
९. त्रिशूल	१०. मंचपुरी
१०. अभग्न गुफा	११. गणेश गुफा
११. ललाटेंदु गुफा	१२. दानघर
१२. आंकाश गंगा	१३. हाथी गुफा
१३. अनंत गुफा	१४. सर्प ,,

१४. जैन मंदिर	१५. वाघ ,,
१५. देव सभा	१६. गणेश्वर ,,
	१७. हरिदास ,,
	१८. जगन्नाथ ,,
	१६: राई ,,

जयपुर के नंदपुर और जैनगर नामके स्थानों में बहुत से जैन गुफा दिखते हैं, और जयपुर के करीव अधिकांश देव मंदिर में इस धर्म की मूर्तियां दूसरे धर्म के देवता की तरह पूजा को पाते हैं।

The Jaina remains are visible in Jeypore and Nandapur and confirm the idea that once it was a place of Jaina influence. The heaps of Jaina images and the vast remains of Jaina temples clearly indicate that in the days past Nandapur was a centre of Jaina religion.

—B.Singh Deo's Jeypore in Vizrgapatam p 3

It is worthy of note that even in Hiuen tsang's time Kalinga was one of the chief seats of the Jains. —Beal's Si-yu ki Vol II p 205.

The characteristic feature of Jainism is its claim to universality. × ×. It also declares its object to be to lead all men to salvation and to open its arms—not only to the noble Aryan, but also to the low-born Sudra and even to the alien, deeply despised in India as the Mlechha.

—Buhler p. 3.

ओड़िसा में जैन धर्म और तत्वविचार प्रसङ्ग में जैन 'हरिवंश' से स्पष्ट होता है कि दक्ष के पुत्र आलेय और बेटी मनोहारी थे। मनोहारी की खूबसूरती उसके रूप और

यौवन को देखकर स्वयं दक्ष इतना चंचल हो उठा कि वे अपने को सम्हाल न सके। इससे रानी इला खीझ कर पुत्र आलेयको लिये दुसरी जगह चली गई। वहां आलय ने इला-वर्धन नाम से एक नगर बसाया। इस इलावर्धन का दुसरा नाम दुर्गादेश था। यह दुर्गादेस ताम्रलिप्त तक व्याप्त था।

इला पुत्र आलेय ने फिर नर्मदा के किनारे माहिष्मती नगर वसाया। और वाद को आलेय जैन सन्यासी हो गए। आलेय के वाद कुनीन राजा हुए। उसने विदर्भ में कुंडिनपुर वसाया था। इस कुंडिन पुर को नल राजा गए थे। वहां उसने अपना वस्त्र खोया था याने नल वहां दिगम्बर जैन हो गए। नल दमयन्ती उपाख्यान में विशेषत: यह ध्यान देने की बात है। और जैन धर्म किस तरह नर्मदा किनारे से ताम्रलिप्त तक व्याप्त था, यह भी ध्यान देने की बात है।

हमारे जगन्नाथ मन्दिर के रंधन रिवाज को नल रंधन कहते हैं। इससे मालूम होता है कि जगन्नाथ मन्दिर मे नल का प्रभाव पड़ा था, जव नल दिगम्बर जैन हो गए और जगन्नाथ मन्दिर से नाता स्थापित हुआ, तव सम्भव है उसी के कारण जगन्नाथ मन्दिर की रंधन प्रणाली को 'नल रंधन' कहा गया, काव्य में विचित्रता दिखाने के लिए अवश्य नल दमयन्तीका मिलन फिर किया गया है जो हो इस कहानी से इतना तो मिलता है कि नलने जैनधर्म ग्रहण किया था।

वैल जहां भ० ऋषभ का वाहन है, वहां वह महादेव का भी वाहन है। हमारे 'वासुआ वलद' से मालूम होता है कि वासुदेव वैल का उपभ्रंश होगा। फिर इससे यह मालूम होता है कि ऋषभ देव से आरम्भ करके जैन धर्म और महादेव धर्म या शैव धर्म हैं, फिर वाद को वशिष्ट नन्दिनी को लेकर विश्वामित्र और शिवमें घोर विवाद को लें तो भासता है

कि हिन्दू धर्म और उसके बीच क्षत्रिय ब्राह्मण के वाद इसतरह चल रहा था, लेकिन इन सबकी जड़में एक स्वतन्त्र चिन्ता धारा के लिए कई और धीरेधीरे एक चिन्तासे दूसरी चिन्ता किसतरह परिवर्तन होती आई है, इसका इतिहास मिलता है।

इस गाय या बैल या सांड को लेकर जैन धर्म से शैव धर्म शैव धर्म से वैष्णव धर्म की उत्पत्ति अच्छी तरह मालुम होती है। सांड सिर्फ उपलक्ष मात्र है। धर्म भी एक चतुष्पद गाय के रूप में कल्पना किया गया है। यह जैन धर्म में है फिर हिन्दू धर्म में भी है। सत्य एवं द्वापुर और कलि में धर्म कैसे चतुष्पादमे धीरेधीरे एक पाद फिर घोर अन्धकारको आता है, और जाता है उसका तथ्य निहिति कियागया है। अतः जैनधर्म ही आद्य धर्म, ऋषभ इसके आदिदेवता, वृषभ इनका वाहन अर्थात् पहले मानव का प्रथम शखा, सहायक होता है यह बैल-वृषभ।

धर्म कलिंगसे सिहलको गया है—ऋषभदेव, सिहलमहावंशमें लिखा है ऋषभदेवने फिर मगध जाकर उत्कलके इस आदिधर्म का प्रचार वहां किया था। स्थविर-वलि जैनग्रन्थमें उल्लेख है कि एक बुड्ढा हाथी नदीस्रोतमें डूबगया। उसका शव समुद्रमें वह गया एक कौआशवके पीछे योनिके अन्दर घुसकर रहगया जब जलचरोने उस शवको खा लिया तो कौआ निकलकर उड़गया।

इस कहानीका रहस्य भेद करना कठिन है। तबभी इतना जान पड़ता है कि उत्कलका उड्डियानतन्त्र देशविदेशमें प्रचारित हुआथा, जिसतरह नदीमें नाव बह कर बादको विशाल समुद्र में जाती है। वर्णन है कि भ० महावीर कलिंग राजाके सुहृद्थे। जैन दिन-यानमेंवर्णित है कि भरतराम के विदाय देकर नन्दाग्राम में रहने लगे,इस नन्दोका अर्थ होताहै सांड। यह मानों सॉड पूज ने वाले वंशमें अन्तर्भुक्त हो गए अर्थात जैनधर्म ग्रहण करलिया।

चन्द्रगुप्त चन्डनामके सॉडसे सुरक्षित हुए थे अर्थात् चन्द्र

गुप्तने जैन धर्म ग्रहण किया था। इसका अर्थ यही होता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पाँच वृक्ष प्रसिद्ध हैं यथा-अशोक वट, विल्व, अश्वत्थ और धात्री। इन पांच वृक्षों को तरह तरह के आदमी पूजा करते थे। भुवनेश्वरके गगंवट्ठ या गगावट्ठ ब्राह्मण वटवृक्षके उपासक थे। उसीतरह महादेव पूजक ब्राह्मणों को विल्व वृक्ष पूज्य था। हमारे यहां यह मामूली बात है कि वट और अश्वत्थका विवाह हो गया था। इसका अभिप्राय यह होता है कि दो धर्म सम्प्रदाय काल क्रमसे मिल गए थे। अश्वत्थ ही जैनधर्मका प्रतीक और वही हिन्दू धर्मका। लेकिन फिर कल्प वृक्ष भी जैनधर्मका चिन्ह है। खारवेल विल्वके उपासक निकलते हैं। खारवेल शब्द में ही विल्व शब्द का उल्लेख है।

पूर्ण कुम्भ नारी के स्रोत वक्ष का चिह्न है। उस पूर्ण कुम्भ को देखना शुभ होता है। ऐसे सोचकर हम मंगल घड़ी में घर में पूर्ण कुम्भ या पानी के कलश जल भरकर रखते हैं। पूर्ण कुम्भ फिर जैन धर्म के भ० मल्लीनाथ का चिह्न होता है। श्वेताम्बर जैन कहते हैं कि ये पहले नारी थे। और बाद को नर रूप को धारण किया था। हिन्दू शास्त्र के अर्द्ध नारीश्वर की तरह यह बात है। इन मल्लीनाथ का सादृश्य फिर हमारी सुभद्रा से है। उनका चिह्न होता है कलश, मारीच की पत्नी कलश पूजा करती थी अर्थात् वे जैन थे।

जैन 'स्थविरावली' में लिखा है, जैसे जलते हुए अङ्गार कुचैले पानीके लगनेसे धीरे धीरे बुझ जाता है, उसी तरह उम्र बढ़नेके साथसाथ मानवकी काम वासना प्रज्वलित हो कर धीरे धीरे बुझने लगती है। किन्तु कोयलेमें आग लगनेसे जिस तरह कोयला अग्निमय होता है, उसी तरह युवती नारीके नूतनस्पर्श से नर रूपी जीर्ण तरु भी फिर वसन्तायित हो उठता है।

भ० आदिनाथ ऋषभ के वाहन वृषभ है। यह चिन्ह हमें

शिक्षा देता है कि वृषभ जिस तरह व्यर्थ ही अपनी शक्ति अपव्यय नहीं करता, गाय का ऋतु समय होने पर ही वह उसके पास जाता है, आदमी को भी वैसे ही उपयुक्त समय में ही नारी के साथ युक्त होना उचित है । सब समय नहीं। नहीं तो आदमी, शीघ्र ही जीर्ण और शक्ति हीन हो जायगा।

जैन धर्म में भ० पार्श्वनाथ का चिन्ह सर्प फण है। यह पार्श्वनाथ पर्शुराम के सदृश भासते है। पार्श्वेश्व और पर्शुराम दोनों एक प्रतीत होते हैं।

भ० महावीर का चिन्ह सिंह है, वैसे जो राजाओं की केशरी उपाधि हुई वह इस चिन्ह से ही हुई प्रतीत होती हैं । महावीर का अर्थ हनूमान भी मिला है । ओड़िसा में हम हनूमान को महावीर कहते हैं। ये सब जैन थे, और अगद राज्य के रहने वाले हैं बाद को जब जैन धर्म चलागया तब यह राज्य कोंगद नामसे परिचित हुआ; अर्थात अंगद कहाँ, कः अंगद; उससे कोंगद हुआ माने उड़ीसा से जैनधर्म चलागया।

लगता है कि विमला जैन मकुराइन, शीतला भी, और जगन्नाथ जैन थे। भागवत धर्मका सादृश्य जैन धर्म से है।

जैन 'भगवती सूत्र' में है कि भ० महावीर लाढ देश के एक गांव में गए थे, जहां कुत्ते पालते थे। जैन शास्त्र में एक कहानी है कि ऋषभ ने एक आदमी को गाय पीटते हुए देखा क्योंकि वह नाज खा जाती है। ऋषभ यह दृश्य देखकर करुणार्द्र हो कहने लगे, उसे क्यों मारते हो? उसके मुंह में (बुंडी) ढकना देदो। इस पर वह आदमी बोला. 'वह कैसे दिए जाते हैं? मैं नहीं जानता।' तब ऋषभ ने एक ढकना बनाकर गाय के मुंह में बाँध दिया। इसका फल यह हुआ कि गाय नाज नहीं खा सकी। परन्तु इस तरफ ऋषभ को भी कुछ दिनों तक खाना नहीं मिला, वे कष्ट पाने लगे 'कर्म का फल भोगना पड़ेगा'-यही इस कहानी का मर्म है।

सारांशत: जैन धर्म की कथावार्ता का प्रभाव उड़ीसा की संस्कृति में मिलता है।

शुद्धाशुद्धि पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ऊ	२०	आविष्यकार	आविष्कार
,,	२२	हल करने	हल चलाने
ऐ	१७	लिहाई	निहाई
क	२२	र्दिष्टि	निर्दिष्ट
,,	२४	रूपष्टस्प में	स्पष्ट रूप से
ग	१६	वोड	वोउ
,,	१८	वोड़	वोउ
,,	२०	वोड	वोउ
,,	२३	द्वीपसे	द्वीपमें
घ	१	ईस	ईसा
,,	१०	पूर्न	पूर्व
,,	२२	इलाके	इलाके के
१	१	आदिकालीन का	आदिकालीन
४	६	अनुपात	अनुताप
५	१६	जैनियों	जैनियों की
७	७	नास्ति वक्तव्यं	नास्ति अवक्तव्यं
६	१२	मौज्ञ	मोक्ष
२०	१६	धर्म के	धर्म की
,,	१७	समाज में	आधारित समाज में
,,	२२	अरिष्टनमि	अरिष्टनेमि
२१	२३	जमाने	जमाने में
,,	२६	राज सुसेनजित	राजा प्रसेनजित
,,	२७	पर्श्वनाथ	पार्श्वनाथ
२२	२४	सम्राज्य	साम्राज्य
२३	१२	महाराज	महाराष्ट्र
२४	१७	सर्वदर्श	सर्वदर्शी
२७	१०	पट्टभूमि	पृष्टभूमि
२८	८	यर्पाप	पर्याय
३७	२२	आलाप	आलाप में
३९	६	समाघन	समाधान
,,	१७	प्रमाणिक—	प्रामाणिक—
४२	१८	संगवंश	सुंवंश
४६	१	अन्तिम मात्र का	अन्तिम पाद का मानना
५२	१४	हम	हमें
,,	१५	रभाप्रसाद चंद	रामप्रसाद चंदा
५७	१	विद्याधरों को	विद्याधरों के
६२	१८	खरवेल	खारवेल
,,	२४	शीभायात्रा	शोभायात्रा